हमारी प्रमुख समस्या नागरिकता की पहचान अथवा गिरती हुई अर्थव्यवस्था

प्रश्नोत्तर

प्रश्न–1 विचारधारा और संगठन में क्या फर्क होता है।

उत्तर–विचारधारा क्रिया नहीं करती सिर्फ क्रिया करने के लिये प्रोत्साहित करती है किन्तु संगठन क्रिया में स्वयं भाग लेता है। विचारधारा मोटिवेटर होती है और संगठन मोटिवेटेट।

प्रश्न–2 कौन सा समूह मानवता से प्रभावित है और कौन सा इस्लाम की शक्ति से भयभीत।

उत्तर–भारत इस्लाम की शक्ति से भयभीत है और पश्चिम मानवता से प्रभावित है। गलती दोनो कर रहे है।

प्रश्न–3 क्या इस्लाम में मानवता नहीं है।

उत्तर–इस्लाम में जो लोग धार्मिक है, उन सबमें मानवता है। जो लोग संगठित है वह मानवता को संगठन से नीचे मानते है। इस्लाम में संगठित लोगो की संख्या 90 प्रतिशत है तो धार्मिको की संख्या 10 प्रतिशत।

प्रश्न–4 ईश निंदा कानून अमानवीय है यह सही है किन्तु दुनियां उसके विरूद्ध आवाज क्यों नहीं उठाती।

उत्तर–दुनियां के अनेक देश संगठित इस्लाम से डरे हुये है । इसलिये कोई पहल नहीं करना चाहता।

प्रश्न–5 क्या भारत में गरीबी भूखमरी बढती रहे और आप धार्मिक चिंता करते रहे है।

उत्तर–हम धर्म की चिंता नहीं कर रहे है बल्कि संगठित इस्लाम से संभावित टकराव के परिणाम की चिंता कर रहे है। गुलामी और सुविधा में एक का चयन करना हो तो मैं गुलामी को अधिक खतरनाक समझुंगा। भारत में इस्लाम की बढती हुई ताकत हमें गुलामी की ओर ले जायेगी। इसलिये हम भूख और गरीबी से अधिक बढते हुये इस्लाम को खतरनाक मानते है।

प्रश्न–6 अभी कश्मीर में धारा 370 समाप्त हुई किन्तु भारत के मुसलमान ने कोई विरोध नहीं किया। फिर आप मुसलमानों को क्यों दोष दे रहे है।

उत्तर–सरकार के कश्मीर संबंधी प्रयास पर भारत का मुसलमान चुप रहा यह सही है। किन्तु पाकिस्तान के मुसलमानों के मामले में वह डट कर खडा हो गया। क्योंकि कश्मीर के मामले में विपक्ष का उसे साथ नहीं मिला जबकि नागरिकता कानून में विपक्ष उसके साथ खडा था।

प्रश्न–7 भारत मुस्लिम देशो के साथ दबकर संबंध बनाता है ऐसा हमें नही दिखता।

उत्तर–मुझे तो कभी कभी ऐसा महसूस होता है किन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं।

प्रश्न–8 भारत के प्रधानमंत्री ने कहा है कि हम कोई एनआरसी नहीं बनाने जा रहे है।

उत्तर–भारत प्रधानमंत्री ने जो कहा है उससे हम सहमत नहीं है। एनआरसी भी बनना चाहिये। रोहिंग्या को भी निकालना चाहिये और अंत में समान नागरिक संहिता तक जाना चाहिये। समान नागरिक संहिता ही हमारा लक्ष्य होना चाहिये।

प्रश्न–9 क्या आमतौर पर मुसलमान राष्ट की तुलना में धर्म को उपर मानता है।

उत्तर–आमतौर पर मुसलमान न राष्ट को उपर मानता है न हीं धर्म को। वह तो संगठन को उपर मानता है। शुक्रवार को दोपहर वह मस्जिद में इकटठा होता है तो नमाज की तुलना में तकरीर को अधिक महत्व दिया जाता है।

प्रश्न–10 मुसलमानों ने इस कानून से क्या समझा और अन्य लोगों ने इस प्रदर्शन से क्या समझा।

उत्तर– भारत का मुसलमान अच्छी तरह समझ गया कि यह कानून समान नागरिक संहिता के लिये पहला चरण है अंतिम नहीं। यदि वह चुप रहा तो धीरे धीरे समान नागरिक संहिता आ ही जायेगी। मुसलमानों को छोडकर भारत के अन्य सभी लोग समझ गये कि भारत का मुसलमान किसी भी परिस्थिति में समान अधिकार नहीं होने देगा। उसे विशेषाधिकार चाहिये अन्यथा वह न शांति से रहेगा न ही रहने देगा।

प्रश्न–11 भारत के विपक्षी दल भी जानते है कि नागरिकता कानून पर वे कमजोर पडते जा रहे है। फिर भी विपक्षी दल इसका विरोध क्यों कर रहे है।

उत्तर–सत्तर वर्षो तक भारत के सभी दल हिन्दुओं के विरूद्ध मुसलमानों को प्रसन्न करने में सक्रिय रहे अब इनके सामने खतरा है कि हिन्दू तो अभी उन पर विश्वास नहीं करेगा और यदि मुसलमान भी किनारे हो गया तो उनके अपने वोट भाजपा को छोडकर अन्य दलों में चले जायेगे। अर्थात उनकी अपनी स्थिति न सत्ता में रहेगी ना ही विपक्ष में। यह सारा टकराव सत्ता रूढ दल से नहीं है बल्कि विपक्ष में अपने अस्तित्व के लिये है। हर दल चाहता है कि वह मुसलमानों में यह विश्वास करा दे कि वही दल नरेन्द्र मोदी को पराजित कर सकता है।

प्रश्न–12 यदि हम हिन्दु है तो क्या हम मुसलमान को अनुकरण करने लग जाये। मानवता हमारे लिये सर्वोच्च है और आप मानवता को महत्व नहीं दे रहे।
उत्तर–मैं आपसे सहमत हूॅ किन्तु परिस्थिति अनुसार रणनीति बदलनी चाहिये। विरोधी के साथ मानवता का व्यवहार किया जा सकता है किन्तु शत्रु के साथ नहीं किया जा सकता।
प्रश्न–13 क्या भारत का हर मुसलमान पाकिस्तान के मुसलमानों के प्रति चिंता व्यक्त कर रहा है।
उत्तर–मुसलमानों में 2–4 प्रतिशत लोग पाकिस्तान के विरूद्ध दिखते है। मुसलमानों के अधिकांश प्रमुख लोग पाकिस्तान के प्रति सह हृदय है और अन्य लोग इस मामले में या तो चुप रहते है या प्रमुख लोगों के साथ हो जाते है। आपने देखा होगा कि मुसलमान चाहे किसी भी संस्थान में हो लेकिन वह इस आंदोलन के प्रति अपनी दलीय निष्ठा छोडकर भी भ्रमित है।
प्रश्न–14 यह प्रश्न आप कांग्रेस पार्टी से क्यों नहीं पूछ रहे है।
उत्तर–कांग्रेस के लोग इस प्रश्न पर कोई उत्तर ही नहीं देते है। उनके पास इसका कोई उत्तर है ही नहीं इसलिये मैने इस प्रश्न को सार्वजनिक किया है। मेरे विचार में सच्चाई यह है कि भारत का संविधान ही साम्प्रदायिक है और उसे झूठ बोलकर अब तक धर्मनिरपेक्ष कहा जा रहा है।
प्रश्न–15 चीन ने अमानवीय तरीके से मुसलमानों पर अत्याचार किया है। क्या आप उसे ठीक समझते है?
उत्तर–चीन ने कोई अमानवीय कार्य नहीं किया है। चीन ने उन्हें अपनी जेलों में रखकर संस्कारित करना शुरू किया है। कुछ ही वर्षो में संस्कारित होकर वे छोड दिये जायेगे। उनके साथ जेलों में कोई अत्याचार नहीं हो रहा।
प्रश्न–16 क्या आप भी भारत में चीन के समान कैम्प बनाकर रखना चाहते है।
उत्तर–मैं ऐसा नहीं चाहता किन्तु यदि कोई किसी भी तरह मानेगा ही नहीं तब मजबूरी में विचार करना पडेगा। यदि किसी को पाकिस्तान से प्रेम है तो वह पाकिस्तान के लिये स्वतंत्र कर दिया जाना चाहिये। किसी को भी जाने से न रोका जाये किन्तु यदि आप भारत में है तो आपको विशेषाधिकार नहीं दिया जा सकता।
प्रश्न–17 अपने जय चन्द शब्द का प्रयोग किया है आपका इशारा किस ओर है।
उत्तर–स्वतंत्रता के पूर्व से ही साम्यवादियों ने अपनी भूमिका इसी प्रकार की रखी है। इन्होंने स्वतंत्रता के पूर्व गांधी का विरोध किया। जयप्रकाश के समय भी इन्होंने कांग्रेस पार्टी का साथ दिया और अब भी उनकी भूमिका लगभग वैसी ही है। अन्य विपक्षी दल अभी दुविधा में है कि वे किस दिशा में जाये।
प्रश्न–18 क्या आप आर्थिक गिरावट को कोई समस्या नहीं मानते है।
उत्तर–आर्थिक गिरावट एक समस्या है किन्तु जब पंडाल में आग लगी हो तब यज्ञ की चिंता छोडकर आग बुझाना हमारी सर्वोच्च प्राथमिकता है। अभी दुनियां इस्लामिक संकट के समाधान के लिये भारत की ओर देख रही है तो भारत अभी आर्थिक समस्या में व्यस्त नहीं हो सकता। आर्थिक समस्या का समाधान समान नागरिक संहिता के बाद भी हो सकता है।
प्रश्न–19 क्या आप संघ से जुडे हुये नहीं है।
उत्तर–मैं ना समझ नही हूॅ जो संघ से जुडुंगा। संघ को बने 100 साल हो गये। फिर भी भारत का एक बार विभाजन हो गया और दुबारा फिर भी हो सकता है। संघ अपने विस्तार के लिये इस समस्या का लाभ उठाना चाहता है समाधान नहीं चाहता। समाधान विश्व को करना है तो संघ विश्व एकीकरण में बाधा पैदा करता है जिससे समस्या बनी रहे। संघ पहले समान नागरिक संहिता की बात करता था तो अब हिन्दू राष्ट की बात करने लगा। क्योंकि समान नागरिक संहिता इस समस्या का समाधान है और हिन्दू राष्ट इसे लम्बे समय तक जीवित रखेगा।
प्रश्न–20 क्या आपने गृह युद्ध के खतरनाक परिणामों के विषय में सोचा है।
उत्तर–गुलामी और गृह युद्ध में से यदि एक को चुनना हो तो मैं गृह युद्ध चुनुंगा गुलामी नहीं।
प्रश्न–21 क्या आपको लगता है कि इससे विश्व युद्ध भी हो सकता है।
उत्तर–इस संबंध में कोई अनुमान लगाना उचित नहीं है किन्तु विश्व युद्ध से डरकर भागना भी ठीक नहीं है।
प्रश्न–22 लोग भूखे मरते रहे और हम साम्प्रदायिक चिंता करे।
उत्तर–जीडीपी का शून्य होना कोई महत्व नहीं रखता यदि जीडीपी शून्य हो जाती है तब भी यथा स्थिति ही रहेगी कोई भूखा नहीं मरेगा। वर्तमान समय में कोई भी व्यक्ति भूखा नहीं मर रहा है। भूख से मरने की बात अति सयोक्ति है। क्योंकि सरकार ने भूख की गारंटी दी हुई है। इसलिये काल्पनिक प्रचार का कोई महत्व नहीं होना चाहिये। मैं स्पष्ट कर दू कि मैं सुविधा की जगह शांति को अधिक महत्व देता हूॅ।

दुनिया में कोई भी दो व्यक्ति एक समान क्षमता वाले नही होते इसलिये हर व्यक्ति की स्थिति अलग अलग होती है। जो भी लोग समानता के प्रयत्न करते है वे या तो गलत हैं या उनका उददेश्य गलत है। स्वतंत्रता सबसे महत्वपूर्ण है और विशेष परिस्थिति में सहायता भी दी जा सकती है किन्तु समान नहीं बनाया जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति में क्षमता तो अलग अलग होती ही है गुण भी अलग अलग होते हैं। कुछ लोगो में निष्कर्ष निकालने की क्षमता अधिक होती है तो कुछ लोगो में कम। जिनमें निष्कर्ष निकालने की क्षमता अधिक होती है वे विचार प्रधान बन जाते है और जिनमें यह क्षमता कम होती है वे संस्कृति प्रधान बन जाते है। प्रत्येक व्यक्ति में विचार और संस्कृति का मिला जुला स्वरूप होता है किन्तु मात्रा कम ज्यादा होती रही है। विचार आमतौर पर देश, काल, परिस्थिति अनुसार बदलते रहते है जबकि संस्कार आसानी से नहीं बदलते।

कोई व्यक्ति बिना सोचे समझे बार बार किसी कार्य को करने लगता है तो वह उसकी आदत बन जाती है। ऐसी आदत लम्बे समय तक बनी रहे तो वह उस व्यक्ति का संस्कार बन जाती है। ऐसा संस्कार जब बहुत बड़ी संख्या में लोगो के बीच समान रूप से स्थापित हो जाये तो वह उस समूह की संस्कृति बन जाती है। संस्कृति बहुत धीरे धीरे बनती है, दीर्घकालिक होती है और आसानी से बदलती नहीं। विचार मौलिक होता है परिवर्तनशील होता है। बालक जब जन्म लेता है तो सबसे पहले उसके पारिवारिक संस्कार बनते है और बाद में धीरे धीरे उसके स्वयं के विचार बनते है। विचार स्वयं के निष्कर्ष होते है। संस्कार अनुकरण से बनते है। किसी विचारक के विचार समाज में बिना विचारे स्वीकार कर लिये जाते है तो वे संस्कार बन जाते है। ऐसी परिस्थिति में उक्त विचारक के बाद जब कोई परिस्थिति अनुसार सुधार या संशोधन की बात आती है तब उक्त संस्कृति से नये विचारों का टकराव शुरू हो जाता है क्योंकि संस्कार आसानी से बदलता नहीं और विचार हमेशा बदलता रहता है। यही कारण है कि किसी भी नये विचारक को प्रारंभ में बहुत खतरे उठाने पड़ते है और जब कालान्तर में कोई नया विचार आता है तब उक्त विचारक के विचारों के आधार पर बना सांस्कृतिक संगठन नये विचारों के लिये खतरा बन जाता है। नये विचार और संस्कृति में एक टकराव होता है और उस टकराव के बाद विचार और संस्कृति के बीच कुछ संशोधित मार्ग निकलता है।

वर्तमान दुनियां में विचारों का अभाव होकर संस्कारों का प्रभाव बढ़ रहा है। सारी दुनिया में भारत इन दोनों के बीच समन्वय के मार्ग पर चलता था। वर्ण व्यवस्था इसका आधार रही। विचारक मार्गदर्शक होता था और अन्य तीन रक्षक, पालक और सेवक मार्गदर्शित होते थे अर्थात अनुकरण करते थे। जबसे भारत में वर्ण व्यवस्था विकृत हुई और विचार मंथन बंद हुआ तब भारत गुलाम हुआ। तबसे भारत में विचार मंथन शुरू नहीं हो सका और अब तक लगभग वही स्थिति है। परिणाम हुआ कि हम दुनियां की अन्य संस्कृतियों की आँख बंद करके नकल करने लगे। दुनिया में शक्ति प्रधान साम्यवाद, संगठन प्रधान इस्लाम तथा धन प्रधान पश्चिम के बीच निरन्तर टकराव बना हुआ है। भारत विचार शून्य होने के कारण इन तीनों के टकराव का शिकार बन गया अर्थात भारत विचारों के अभाव में इन तीनों की नकल करने के लिये मजबूर हुआ, जिसका परिणाम हुआ कि भारत इन तीनों के टकराव में फंस गया। आज भारत में जिस तरह हिंसा बढ़ रही है उसका प्रमुख कारण इन तीनों संस्कृतियों के टकराव के प्रयोगस्थल के रूप में भारत में दिखाई दे रहा है। वर्तमान हिंसा हमारी भारतीय संस्कृति में ही लगातार बढ़ती जा रही है क्योंकि विचार मस्तिष्क का विषय होता है अनुकरण हृदय को प्रभावित करता है। विचार ज्ञान प्रधान होता है तो संस्कार कला प्रधान। भारत में चिंतन मंथन बंद हो गया। वर्ण व्यवस्था टूट गई। विचार और संस्कृति का समन्वय नहीं रहा। परिणामस्वरूप भारत पूंजीवादी लोकतंत्र, साम्यवादी तानाशाही, इस्लामिक साम्प्रदायिकता के विश्वव्यापी टकराव के प्रयोग स्थल के रूप में आगे बढ़ रहा है। भारत हर जगह मोटिवेटेट के समान आचरण कर रहा है और दुनियां की तीनों संस्कृतियां भारत पर मोटिवेटर बनकर अपने संस्कार थोप रही है जबकि प्राचीन समय में इससे ठीक उल्टा था अर्थात भारत मोटिवेटर था और दुनिया मोटिवेटेट।

चाहे कोई व्यक्ति हो अथवा राष्ट्र, विचार और संस्कार का संतुलन ही उसे महत्वपूर्ण बनाता है। यदि व्यक्ति संस्कार विहीन होकर सिर्फ विचार प्रधान हो जायेगा तो वह साम्यवादियों के समान दुनियां के लिये खतरा भी बन सकता है। यदि कोई व्यक्ति सिर्फ अंधा अनुकरण ही करेगा तो वह गांधी के समान विचारक को गोली भी मार सकता है। पश्चिम में भी अनेक विचारक फांसी पर चढ़ा दिये गये। इसलिये विचार और संस्कार का संतुलन होना चाहिये। भारत में वर्ण व्यवस्था के रूप में समाज में ऐसा संतुलन था। वर्ण व्यवस्था रूढ़ हो गई। विचारकों का अभाव हो गया। विचारकों का स्थान राजनेताओं या

पूंजीपतियों ने ले लिया। परिणाम हुआ कि भारत धीरे धीरे वैचारिक धरातल पर कमजोर होता चला गया। आज भारत में इस्लामिक संस्कृति, पाश्चात्य संस्कृति और हिन्दू संस्कृति के बीच टकराव हो रहा है। मोदी के पूर्व तो यह टकराव इस्लाम, साम्यवाद और पूंजीवाद के बीच था। भारतीय संस्कृति तो इन तीनों के टकराव के कारण लहुलुहान हो रही थी। अब नरेन्द्र मोदी के बाद टकराव इस्लाम, पूंजीवाद और भारतीय संस्कृति के बीच हो रहा है। अब भी भारत में विचार महत्वपूर्ण नहीं बन पा रहा है क्योंकि टकराव सिर्फ संस्कृतियों के बीच है जिसमें से साम्यवादी संस्कृति कमजोर हुई है और हिन्दू संस्कृति धीरे धीरे मजबूत हो रही है किन्तु इस्लामिक संस्कृति तथा साम्यवादी संस्कृति के बीच तालमेल होने से शक्ति संतुलन बराबर का हो गया है। यही कारण है कि वर्तमान भारत में विचार मंथन की जगह हिंसक टकराव बढ़ रहे है। मस्तिष्क की जगह हृदय महत्वपूर्ण हो गया है। सांस्कृतिक संगठन खुले आम विचारों से दूर हट रहे है। धर्म के नाम पर संगठन बन रहे है। ये संगठन मोटिवेटर का काम कर रहे है। समाज किं कर्तव्य विमूढ़ है कि वह क्या करे। उसे मार्गदशकों का मार्गदर्शन नहीं मिल रहा है। उसे मार्गदर्शन मिल रहा है साम्प्रदायिक शक्तियों, राजनैतिक शक्तियों अथवा आर्थिक शक्तियों का। आज वर्तमान भारत की स्थिति यह हो गई है कि कोई भी व्यक्ति मंथन के लिये तैयार नहीं है। विचार मंथन की जगह विचार प्रचार अधिक महत्वपूर्ण बन गया है। मंथन की जगह सक्रियता का प्रचार किया जा रहा है। अच्छे अच्छे विचारक कहे जाने वाले लोग भी विचार मंथन की जगह सक्रियता को अधिक महत्वपूर्ण बता रहे है। जिस देश में गांधी हत्या को भी उचित बताया जा रहा हो उस देश में स्वतंत्र विचार मंथन कितना खतरनाक होगा यह आसानी से समझा जा सकता है। इस्लाम तो पूरी तरह संगठन होता ही है। इस्लाम में स्वतंत्र विचारों को काफिराना कार्य माना जाता है। हिन्दुत्व भी धीरे धीरे उसी दिशा में बढ़ रहा है अर्थात रक्षक, पालक और सेवक के बीच तो टकराव है किन्तु इस टकराव में मार्गदर्शक का महत्व और भूमिका शून्यवत होती जा रही है। विदेशों से आयी हुई असत्य धारणाएं भारत में सत्य के समान प्रचलित और स्थापित हो गई है। भारत में ऐसी कोई प्रणाली विकसित नहीं हो पा रही है जो इन विदेशी असत्य धाराणाओं को वैचारिक धरातल पर चुनौती दे सके।

गांधी एक विचार था गांधीवाद संस्कार बन गया। किसी संस्कारित व्यक्ति ने गांधी की हत्या कर दी तो गांधीवादी किसी दूसरे संस्कारित समूह की गोद में चले गये। यह स्थिति गांधी की ही नही है। विचारक के चले जाने के बाद उक्त विचार के अनुकरणकर्ता किसी भी नये विचार के साथ ऐसा ही व्यवहार करते है जैसा वर्तमान गांधीवादी कर रहे है। भारत दुनिया को संतुलन का संदेश देता रहा है किन्तु आज भारत स्वयं वैचारिक धरातल पर कंगाल हो गया है। भारत आंख मूंदकर विदेशी संस्कृतियों की नकल कर रहा है। इस नकल का परिणाम है कि आज भारत वर्तमान व्यवस्था को बदलने को प्राथमिक कार्य नही समझ रहा है बल्कि वर्तमान व्यवस्था को तोडने की ओर अधिक सक्रिय है। वर्ण व्यवस्था ठीक करने की जगह वर्ण व्यवस्था को तोड देने के नारे लगाये जाते है। वर्तमान कानूनों में सुधार करने की या उनमे बदलने की आवश्यकता है, तोडने की नहीं। भारत में खुले आम साम्यवादी और इस्लामिक संस्कृतियां तो कानून तोडने को प्राथमिकता देती ही है किन्तु हमारी भारतीय संस्कृति में भी कानून बदलने की अपेक्षा कानून तोडने की धारणा को प्रोत्साहित किया जा रहा है। अच्छे अच्छे राजनेता जनहित के नाम पर सड़को पर बेशर्म गुण्डागर्दी करते है और कानून तोडकर पुलिस से टकराना अपना अहोभाग्य समझते है। कानून बदलने पर विश्वास ही नहीं रहा। सिस्टम सबसे उपर होता है और सिस्टम पर विचारकों का ही प्रभाव होता है। विचारकों के अभाव में सिस्टम उच्श्रृंखल हो गया और अब सिस्टम को भी तोड़ना एक फैशन बन गया है। संपूर्ण भारत में विचारों का अभाव हो गया है। संस्कृति हावी हो गई है। संस्कृति भी हमारी भारतीय संस्कृति की जगह साम्यवाद, इस्लाम और पूंजीवाद को मिलाकर खिचड़ी के रूप में बन गई है। भविष्य चिंता जनक दिख रहा है। समाधान वर्तमान सांस्कृतिक टकराव में नही बल्कि विचार और संस्कृति के संतुलन में निकलेगा भारत दुनिया का मार्गदर्शन करता रहा है। वर्तमान भारत मार्गदर्शन के अभाव में किं कर्तव्य विमूंढ़ हो गया है। ऐसी संकटकालीन परिस्थिति में उचित है कि भारत मार्गदर्शन कि दिशा में बहुत तेज गाति से आगे बढ़े। भारत में धर्म, राज्य, अर्थ और श्रम की तुलना में समाज को अधिक महत्वपूर्ण माना जाये। भारत में राजनीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र के साथ–साथ भारतीय समाज शास्त्र को भी आगे किया जाये। भारत में विचार केन्द्र प्रारंभ हो जहां विपरीत विचारों के लोग एक साथ बैठकर स्वतंत्र विचार मंथन कर सकें और समाज का मार्गदर्शन कर सके। विचार और संस्कार का संतुलन ही दुनियां की वर्तमान समस्याओं के समाधान का मार्ग निकालने में सक्षम है। भारत को इसकी पहल करनी चाहिये।

मंथन क्रमांक–152 विचार अधिक महत्वपूर्ण होता है कि संस्कृति

प्रश्नोत्तर

प्रश्न–1 मैंने अबतक संस्कृति की जो परिभाषा सुनी है उससे आपकी परिभाषा मेल नहीं खाती। आप ऐसी परिभाषा कैसे दे रहे है।

उत्तर–हो सकता है कि ये परिभाषा नयी हो किन्तु आप यह बताईये कि इसमें गलत क्या है।

प्रश्न–2 हमारी संस्कृति तो कई हजार वर्ष से बनी हुई है। क्या इसमें कोई संशोधन भी होता है।

उत्तर–संशोधन होता है। वर्तमान समय में हमारी भारतीय संस्कृति में दो महत्वपूर्ण बदलाव दिख रहे है। एक है कमजोर को दबाना और मजबूत से दबना। दूसरा है कम परिश्रम और अधिक लाभ का प्रयत्न। प्राचीन समय में ऐसा नहीं था।

प्रष्न–3 क्या विचारक के विचार बिना विचारे भी स्वीकार हो जाते है।

उत्तर– यदि व्यक्ति भावना प्रधान है तो वह बिना विचारे भी दूसरो के विचार स्वीकार कर लेता है।

प्रष्न–4 क्या आपके विचार में ऐसा टकराव होता ही है। यदि हॉ तो क्या आपको भी ऐसी कठिनाई दिखती है।

उत्तर–विचार और संस्कार के बीच टकराव होता ही है। यह कठिनाई मेरे सामने भी है। मैं गांधी हत्या को गलत मानता हूॅ। हिन्दू राश्ट को भी ठीक नहीं मानता। मैं किसी प्रकार की हिंसा के विरूद्ध हूॅ। संघ के लोग आमतौर पर मेरे विरूद्ध रहते है। मैं नक्सलवादी हिंसा के विरूद्ध हूॅ। मैं अल्पसंख्यक तुश्टिकरण के विरूद्ध हूॅ। गांधीवादी हमेषा मेरे विरूद्ध रहते है। फिर भी मैं मानता हूॅ कि विचारक को हिम्मत करके अपने निश्पक्ष विचार समाज के समक्ष रखना चाहिये। विचारक को विचार प्रचार से बचना चाहिये।

प्रष्न–5 प्राचीन समय में भारत बहुत पिछडा हुआ था। आप कैसे मानते है कि भारत विचारों का निर्यात करता था।

उत्तर–प्राचीन समय में भारत पिछडा हुआ होता तो सूर्य ग्रहण, चंद्र ग्रहण की सटीक गणना कैसे हुई होगी।

प्रष्न–6 मैंने तो सुना है कि गुलामी काल में भी भारत में अच्छे विचारक पैदा हुये।

उत्तर–गुलामी काल में भारत में जिन्हें विचारक माना जाता है उनका स्तर पिछले विचारकों की तुलना में बहुत कमजोर रहा है। गांधी के बाद हमें जयप्रकाष नहीं गांधी देखना पड़ा और जयप्रकाष के बाद अन्ना हजारे ही गांधी दिखने लगे। अन्ना के बाद क्या होगा मालूम नहीं।

प्रष्न–7 क्या भारत में विचार मंथन पूरी तरह बंद है।

उत्तर–आप स्वयं सोच सकते है कि भारत ने पष्चिम की नकल करके पूरा संविधान बनाया। इससे अधिक और क्या प्रमाण चाहिये। आज भी भारत हर मामले में विदेषों की नकल कर रहा है।

प्रष्न–8 क्या आप लोकतंत्र और पूंजीवाद के पक्ष में नहीं है।

उत्तर–हमारी व्यवस्था वर्ण व्यवस्था पर आधारित रही है। भारत में समाज सर्वोच्च रहा है। लोकतंत्र और पूंजीवाद अन्य व्यवस्थाओं से तो अच्छे है किन्तु हमारी व्यवस्था अर्थात लोकस्वराज्य की तुलना में कमजोर है।

प्रष्न–9 आपके विचार में साम्यवादी विचार प्रधान होते है या संस्कृति प्रधान।

उत्तर–दुनियां मे साम्यवादी सबसे अधिक चालाक माने जाते है और मुसलमान या संघ के लोग सबसे अधिक भावना प्रधान। स्वाभाविक है कि साम्यवादी विचार प्रधान होते है और मुसलमान या हिन्दू संस्कृति प्रधान। यह अलग बात है कि विचार प्रधान खतरा भी अधिक बन सकता है और खतरा दूर करने वाला भी। संस्कृति प्रधान दूसरों के पीछे चलता है इसलिये वह न खतरा बनता है न खतरा दूर कर सकता है। साम्यवाद दुनियां के लिये बडा खतरा बना रहा है।

प्रष्न–10 क्या भारतीय संस्कृति अब टक्कर में आती दिख रही है।

उत्तर–जिस तरह अल्पसंख्यकों और उनके पक्षकार विपक्षी दलों में बेचैनी दिख रही है उससे साफ दिख रहा है कि अब स्थिति एक पक्षीय नहीं है। अब भारतीय संस्कृति मुकाबला कर रही है।

प्रष्न–11 आप नरेन्द्र मोदी को विचारक मानते है या संस्कारित।
उत्तर–नरेन्द्र मोदी संस्कारित है विचारक नहीं। विचारक सिर्फ विचार देता है उसका पालन नहीं कराता। नरेन्द्र मोदी भारतीय संस्कृति को आगे बढा रहे है।

प्रष्न–12 क्या वर्तमान समय में आपको भारत में विचारकों का अभाव दिख रहा है।
उत्तर–मुझे तो ऐसा ही दिख रहा है। हो सकता है कि कही हो भी तो मुझे जानकारी न हो।
प्रष्न–13 ऐसा कहा जाता है कि विचार तो बहुत है किन्तु सक्रियता नहीं।
उत्तर–लोग समझते बूझते हुये भी प्रतिदिन पुलिस की गोली मरते है अथवा आपस में टकराते है। क्या यह सक्रियता का लक्षण नही है। मेरे विचार से उनमें विचार नही है सिर्फ सक्रियता है।

प्रष्न–14 आपके विचार में गांधी की हत्या क्यों हुई।
उत्तर–गांधी एक स्वतंत्र विचारक थे। गांधी साम्प्रदायिक नहीं थे। गांधी अहिंसा को अधिक महत्व देते थे। इसलिये साम्प्रदायिक हिंसक संस्कृति के प्रभावित लोगों ने गांधी की हत्या करा दी। हत्यारा गोडसे मोटिवेटेट था किसी हिंसक विचारधारा से प्रेरित था। उसने स्वयं सोच समझकर हत्या नहीं की है।

प्रष्न–15 क्या इस्लाम में स्वतंत्र विचार की कोई छूट नही है।
उत्तर–किसी भी सम्प्रदाय में स्वतंत्र विचारों की छूट नही होती। इसलिये इस्लाम में तो कोई प्रष्न ही नहीं है।

प्रष्न–16 क्या यह संभव है कि भारत जैसे बडे देष में असत्य धारणाएं सत्य के समान स्थापित हो जाये।
उत्तर–यह साफ दिख रहा है कि महंगाई बेरोजगारी बढती हुई गरीबी, महिला अत्याचार, जैसी कई धारणाएं पूरी तरह असत्य है। फिर भी आज भारत का हर आदमी इनके अस्तित्व को स्वीकार कर रहा है। महंगाई तो है ही नहीं। बेरोजगारी परिभाशा गलत है। गरीबी की जगह आर्थिक असमानता बढ रही है। महिला अत्याचार के नाम पर वर्ग विद्वेश बढाया जा रहा है। फिर भी प्रचार माध्यम असत्य को सत्य के समान स्थापित कर दे रहे है। राज्य का दायित्व सुरक्षा और न्याय माना जाता है किन्तु भारत में जनकल्याण को ही महत्व दिया जा रहा है।
प्रष्न–17 क्या गांधीवादी किसी दूसरे सांस्कृतिक समूह के साथ है।
उत्तर–गांधी की हत्या में कटटर हिन्दुत्व का प्रभाव माना जाता है। गांधी वादी हिन्दुत्व विरोध में चले गये। उन्होने नक्सलवाद हिंसक इस्लाम की मदद करनी षुरू कर दी। गांधी अहिंसा के पक्षधर थे। क्योंकि वे विचारक थे। गांधीवादी हिन्दुत्व विरोध में हिंसा का भी समर्थन करने लग गये। गांधी विचारक थे और गांधीवाद गांधी की नकल।

प्रष्न–18 गांधी कानून तोडते थे और आप कानून तोडने का विरोध कर रहे है।
उत्तर–गुलामी काल में कानून तोडने की बात हो सकती है किन्तु लोकतंत्र में नहीं। वैसे गांधी कानून तोडने के पक्षधर नही थे।
प्रष्न–19 यदि कानून बदलने का मार्ग न हो तब क्या किया जाये।
उत्तर–जब कानून तोडकर आप अपना तथा समाज का नुकसान करेगे तो यह अच्छा नहीं है। अच्छा होगा कि कानून बदले जाये।
प्रष्न–20 इसका समाधान क्या है।
उत्तर–एक संविधान सभा बने जिसे जनमत द्वारा बनाया जाये। संविधान सभा को संविधान संषोधन के अधिकार हो। तंत्र का संविधान संषोधन में कोई हस्तक्षेप न हो। तंत्र के अधिकार संविधान तय करे।

प्रष्न–21 क्या आप भारतीय संस्कृति को मजबूत देखना चाहते है।
उत्तर–वर्तमान स्थिति में तो भारतीय संस्कृति को साम्यवाद इस्लाम और पूंजीवाद की खिचडी संस्कृति की तुलना में मजबूत होना चाहिये। किन्तु संस्कृति और विचारों का संतुलन ही आदर्ष होता है।

प्रष्न–22 इसके लिये क्या करना चाहिये।
उत्तर–विपरीत विचारों के लोग एक साथ बैठकर विचार मंथन की आदत डाले। परिवारों में आपसी संवाद बढना चाहिये। देष में कुछ ऐसे लोग बढे जिनकी विष्वसनीयता कायम हो। धीरे धीरे मार्गदर्षक मंडल को मजबूत होना चाहिये। वर्ण व्यवस्था को मार्गदर्षक रक्षक, पालक, सेवक के नाम से आगे आना चाहिये।

प्रष्न–23 क्या धर्मषास्त्र कम महत्वपूर्ण है।
उत्तर–समाजषास्त्र की तुलना में अन्य सभी षास्त्र कम महत्वपूर्ण है क्योंकि अन्य सभी समाज के सहायक होते है। समाज सर्वोच्च होता है इसलिये समाज षास्त्र पर नये तरीके से सोचा जा सकता है।

मंथन क्रमांक 153 ''भारत हिन्दू राश्ट्र या धर्मनिरपेक्ष''

वर्तमान समय में भारत में लगातार इस विशय पर बहस छिड़ी हुई है कि भारत हिन्दू राश्ट्र बने या धर्म निरपेक्ष रहे। संघ परिवार हिन्दू राश्ट्र के पक्ष में है तो संघ विरोधी सब लोग मिलकर भारत को वैसा धर्मनिरपेक्ष बनाये रखना चाहते है जैसा वर्तमान में है। हमें इस विशय पर चर्चा करने के पूर्व धर्म, सम्प्रदाय, धर्म निरपेक्षता, हिन्दुत्व और राश्ट्र पर अलग अलग मंथन करना चाहिये।

धर्म और संगठन में बहुत अंतर होता है। धर्म गुण प्रधान होता है, व्यक्तिगत आचरण तक सीमित होता है तो संगठन सामूहिक होता है, षक्ति प्रधान होता है, अप्रत्यक्ष रूप से सम्प्रदाय बन जाता है और कमजोरों का षोशण करना षुरू कर देता है। धर्म विष्वव्यापी होता है। धर्म का संबंध किसी राश्ट्र, किसी मान्यता अथवा किसी भौगोलिक सीमा से नही बांधा जा सकता। धर्म कर्तव्य तक जुड़ा होता है और धर्म में अधिकार की कोई भूमिका नही होती जबकि संगठन अपनत्व प्रधान होता है। उसमें न्याय गौण हो जाता है। हिन्दुत्व धर्म माना जाता है क्योंकि हिन्दुत्व गुण प्रधान है, संगठन प्रधान नहीं। इस्लाम पूरी तरह संगठन है, इसलिये वह धर्म नहीं हो सकता, भले ही धीरे धीरे वह धर्म कहा जाने लगा। वर्तमान में संघ परिवार भी धर्म के नाम पर संगठन के रूप में आगे आ रहा है। संघ का धर्म के वास्तविक स्वरूप से दूर दूर तक कोई संबंध नहीं है। राश्ट्र षब्द भी कई अर्थो में प्रयोग होने लगा है। राश्ट्र किसी भौगोलिक सीमा से घिरा हुआ भूभाग होता है जिसकी एक स्वायत्त राज्य व्यवस्था हो। राश्ट्र को किसी निष्चित संस्कृति की सीमा में नहीं बांधा जा सकता। लेकिन वर्तमान समय में राश्ट्र को किसी संस्कृति से बांधने का प्रयास हो रहा है। राश्ट्र की सीमाएं भी बदलती रहती है। धर्मनिरपेक्षता की भी परिभाशाएं बदलती रहती है। धर्मनिरपेक्षता की एक परिभाशा होती है सभी धार्मिक संगठनों से समान दूरी, दूसरी परिभाशा होती है सभी धार्मिक संगठनों से समान सहभागिता, तीसरी परिभाशा होती है सभी धार्मिक संगठनो से सम्पूर्ण निरलिप्तता। यदि धर्म का अर्थ गुण प्रधान है तो कोई भी सरकार धर्मनिरपेक्ष हो ही नहीं सकती। यदि धर्म का अर्थ संगठन प्रधान होता है तब धर्म निरपेक्षता तलवार की धार पर खड़ी रहती है।

स्वतंत्रता के बाद धर्मनिरपेक्षता की एक नई परिभाषा बनी कि हिन्दुओं को दबाया जाए और मुसलमानों को मजबूत किया जाए। हिंदुओं को दबाने के लिए हिन्दू कोड बिल बना और मुसलमानों को उभारने के लिए उन्हें अल्पसंख्यक के रूप में विशेषाधिकार दिए गए। यह सारा खेल धर्मनिरपेक्षता के नाम पर एक बुरी नीयत से किया गया षड्यंत्र था। हिंदुओं का बहुमत गुण प्रधान था और मुस्लिम बहुमत संगठन प्रधान। हिन्दू समाज को सर्वोच्च मानता था तो मुसलमान संगठन को। हिन्दुओं में विचार और संस्कार का संतुलन था तो मुसलमानों में विचार षुन्यता थी, संस्कार प्रधानता। विभाजन के पूर्व हिन्दुओं ने शालीनता दिखाई थी तो मुसलमानों ने विभाजन करवाया था। इसके बाद भी भारत में हिन्दुओं के उपर मुसलमानों को विषेश तरजीह दी गयी और उस पक्षपात का नाम धर्मनिरपेक्षता रख दिया गया। यह एक घपला था। सुप्रीम कोर्ट ने फैसला दिया कि हिन्दू जीवन पद्धति है, कोई संगठित विचारधारा नहीं। हिन्दुओं में किसी भी व्यक्ति को धर्म से निकालने की कोई व्यवस्था नहीं थी। हिन्दुओं में पूजा पद्धति के नाम पर कोई भेद नहीं था। कोई व्यक्ति गौ हत्या करता है तब भी वह हिन्दू, गाय की पूजा करे तब भी। कोई व्यक्ति ईश्वर को मानता है तब भी वह हिन्दू है और नहीं मानता है तब भी। हिन्दू सर्वधर्म समभाव मानता है, वसुधैव कुटुम्बकम को स्वीकार करता है, व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकारों को मौलिक अधिकार मानता है, तो इस्लाम न सर्वधर्म समभाव मानता है न वसुधैव कुटुम्बकम मानता है न ही व्यक्ति के मौलिक

अधिकारों को स्वीकार करता है। हिन्दू वर्ण और आश्रम व्यवस्था के द्वारा मार्गदर्शक, रक्षक, पालक और सेवक के बीच समान संतुलन मानता है तो इस्लाम में ऐसा कोई संतुलन नहीं है। वहां तो सिर्फ संगठन ही सर्वोच्च है। इस्लाम में सामाजिक हिंसा को धार्मिक मान्यता प्राप्त है जबकि हिन्दुत्व में सामाजिक हिंसा पर पूरी तरह प्रतिबंध है। स्पष्ट है कि भारत को यदि किसी धर्म का पक्ष ही लेना था तो उसे हिन्दुओं के पक्ष में होना चाहिए था अथवा पूरी तरह धर्मनिरपेक्ष रहना चाहिए था जो अप्रत्यक्ष रूप से हिन्दुओं का पक्ष होता। यदि वर्ण व्यवस्था में कुछ बुराईयां आई थी तो उन बुराई को धीरे धीरे गांधी और दयानंद सरीखे विचारक समाप्त करने लगे थे। उचित नहीं था कि उन बुराईयों का लाभ उठाकर अपनी राजनैतिक सत्ता को मजबूत करने का प्रयास किया जाता लेकिन भारत के कुछ सत्ता लोलुप इस्लाम प्रेमी या पष्चिम विचारधारा से ओतप्रोत नेताओं ने स्वतंत्रता के समय खुलकर यह पाप किया। आज भी हिन्दू ऐसे बुरी नीयत से बनाये गये संविधान का षांति और निश्ठापूर्वक पालन कर रहे है। मैं स्पश्ट हूॅ कि यदि हिन्दुओं की जगह मुसलमानों का बहुमत होता तो कब का संविधान उठाकर फेक दिया जाता और षरीयत थोप दी जाती।

नरेन्द्र मोदी के आने के बाद धीरे धीरे परिस्थितियां बदल रही है। धर्म का अर्थ भी अप्रत्यक्ष रूप से गुण प्रधानता की ओर बढाने का प्रयास हो रहा है। मुस्लिम तृश्टिकरण पर भी कुछ कुछ अंकुष लग रहा है। थोड़ा थोड़ा हिन्दुओं का मनोबल बढ़ रहा है। वर्तमान में मुसलमान और विपक्षी दलों का गठजोड़ जिस तरह सड़कों पर उतर आया है उससे यह स्पश्ट होता है कि अब टकराव एक पक्षीय नहीं है। जेएनयू में जिस तरह गुण्डागर्दी से गुण्डागर्दी के माध्यम से निपटने की षुरूआत हुई वह भी हिन्दू सषक्तिकरण का एक लक्षण है। ऐसे समय में हिन्दुओं को अपनी मूल विचाराधारा को छोड़ने की जल्दबाजी नहीं दिखानी चाहिये। स्वाभाविक है कि समान नागरिक संहिता एक अंहिसक और धर्मनिरपेक्ष प्रयत्न है जो एक तीर के कई षिकार करता है। दुनियां में संगठित मुसलमान हमेषा ही नासमझ माने जाते है। इसी तरह संगठित हिन्दू भी हिन्दू राश्ट्र की मांग करके नासमझी प्रदर्षित कर रहे है। समान नागरिक संहिता और धर्मनिरपेक्षता अप्रत्यक्ष रूप से हिन्दू राश्ट्र का ही एक दूसरा नाम है। समान नागरिक संहिता से मुसलमान और विपक्षी दल चिढ़ेंगे ही। हिन्दुओं पर टकराव बढ़ाने का कलंक भी नहीं लगेगा। हिन्दुओं को अपनी मूल विचारधारा में कोई संगठनात्मक बदलाव भी नही करना पड़ेगा। कहावत है कि सांप यदि बिल में घुस जाये तो बिल को खोदने की अपेक्षा बिल के मुंह पर महुआ के बीज की खली जला दी जाये तो सांप अपने आप बाहर आ जाता है और मारना आसान हो जाता है। समान नागरिक संहिता की आहट होते ही सभी सांप अपने आप बाहर निकलने लगेंगे। मैं नहीं समझता कि इतनी साधारण सी बात हमारे कुछ नासमझ हिन्दुओं के समझ में क्यों नहीं आ रही। वे क्यों हिन्दू राश्ट्र की मांग उठाकर मुस्लिम साम्प्रदायिकता का अनुकरण करना चाहते है। कोई राश्ट्र किसी धार्मिक संगठन का पिछलग्गू नही ंहो सकता। यदि हिन्दू राश्ट्र का अर्थ धर्मनिरपेक्ष भारत है जिसमें रहने वाले प्रत्येक नागरिक को हिन्दू माना जायेगा तो भारत के बाहर रहने वाले गैर हिन्दू माने जायेगे और इस परिस्थिति में विष्व हिन्दू का अर्थ क्या होगा? पता नहीं हिन्दुत्व की परिभाशा को इस प्रकार संकुचित करने का प्रयास क्यों हो रहा है। यदि कोई षब्द जोड़ना भी हो तो हिन्दुस्तानी या भारतीय षब्द जोड़ देने से क्या अंतर हो जायेगा। मैं मानता हूॅ कि यदि किसी व्यक्ति ने मेरी थाली में गौ मांस खाकर उसे अपवित्र कर दिया है तो मैं उसे सुअर का मांस खाकर पवित्र करना चाहूॅ तो यह हिन्दुत्व के विरूद्ध है, भले ही मुझे इससे आत्म संतुश्टि हो जाये। धर्म का वर्तमान गलत अर्थ भी समान नागरिक संहिता के बाद अपने आप सुधर जायेगा। धर्मनिरपेक्षता का भी अर्थ अपने आप बदल जायेगा। बुरी नीयत से लागू किया हिन्दू कोड बिल अपने आप बेमौत मर जायेगा और दुनियां के सामने हमें साम्प्रदायिकता के कलंक से भी नही जूझना पड़ेगा।

मैं तो व्यक्तिगत रूप से इस बात का पक्षधर हूॅ कि हिन्दू राश्ट्र की हिन्दू विरोधी आवाज को तत्काल दबा दिया जाना चाहिये। हमें मुखर होकर समान नागरिक संहिता की मांग करनी चाहिये और वास्तविक धर्मनिरपेक्षता के साथ डटकर खड़ा होना चाहिये। हमें संगठित हिन्दुत्व की जगह विचार प्रधान हिन्दुत्व को अधिक महत्व देना चाहिये। हमें हिन्दुत्व की मौलिक विचारधारा वर्ण आश्रम व्यवस्था के संषोधित स्वरूप मार्गदर्षक, रक्षक, पालक और सेवक के संतुलन पर विचार करना चाहिये। हमें किसी भी तरह हिन्दू राश्ट्र की मांग को घातक समझ कर उसका विरोध करना चाहिये।

मंथन क्रमांक 153 ''भारत हिन्दू राश्ट्र या धर्मनिरपेक्ष''

प्रष्नोत्तर

प्रष्न–1 क्या संगठन गुण प्रधान नहीं होता है।
उत्तर–संगठन में गुणों का महत्व कम तथा अनुषासन का महत्व ज्यादा होता है। संगठन में अपनत्व होता है, सामूहिकता भी होती है।
प्रष्न–2 क्या धर्म स्थानीय नहीं होता।
उत्तर–गुण प्रधान धर्म व्यक्तिगत सीमा तक होता है। समूह का नहीं होता। इसलिये धर्म या तो व्यक्तिगत स्तर तक है अथवा विष्व स्तर तक। किसी राश्ट्र या क्षेत्र तक नहीं हो सकता। वर्तमान समय में धर्म की परिभाशा संगठन के साथ जुड गयी है इसलिये उसका अर्थ बदल गया है।
प्रष्न–3 ईसाइयत के विशय में आपकी क्या राय है।
उत्तर–ईसाईयत भी संगठन के स्वरूप में है किन्तु ईसाईयत में आंषिक रूप से गुणों का भी समावेष है जो इस्लाम में बिल्कुल नहीं है। इस्लाम पूरी तरह संगठन है और हिन्दुत्व पूरी तरह धर्म।
प्रष्न–4 क्या संघ भी एक सम्प्रदाय माना जा सकता है।
उत्तर–अभी तक संघ साम्प्रदायिक संगठन तक सीमित है, सम्प्रदाय नहीं। सम्प्रदाय बनने में कई सौ वर्श लगते है। सम्प्रदाय के बाद धर्म घोशित होने में भी हजारों वर्श लग जाते है।
प्रष्न–5 ऐसा कहा जाता है कि राश्ट्र की संस्कृति भी अपनी होती है।
उत्तर– मैं ऐसा नहीं मानता। भिन्न भिन्न संस्कृतियों के लोग एक राश्ट्र में हो सकते है।
प्रष्न–6 आप भारत सरकार को गुण प्रधान मानते है या संगठन प्रधान।
उत्तर–भारत सरकार जिस संविधान से संचालित है उसमें गुण प्रधानता प्रमुख नहीं है, संगठन प्रधानता है। जिस संविधान में परिवार और गांव को बाहर निकाल कर धर्म और जाति को घुसाया गया। उसे आप गुण प्रधान नही कह सकते। गुण व्यक्तियों के होते है समूहों के नहीं।

प्रष्न–7 आपके विचार संविधान निर्माताओं से भूल हुई या नीयत में कोई गडबडी थी।
उत्तर–उनकी नीयत खराब थी। संविधान निर्माताओं में से प्रमुख लोग इस्लाम से प्रभावित थे और पष्चिमी सामाजिक व्यवस्था से षिक्षित थे। उन्हें भारतीय चिन्तन से घृणा थी।
प्रष्न–8 क्या मुसलमानों में कोई विचार नहीं होता।
उत्तर–वैसे तो प्रत्येक व्यक्ति में कुछ न कुछ विचार भी होता है और कुछ संस्कार भी लेकिन इस्लाम में विचार प्रधानता न के बराबर है। यदि कोई व्यक्ति अंतिम रूप से किसी धर्म ग्रंथ अथवा महापुरूश के पीछे चलने लग जायेगा तो वहां विचारों की गुजाइष नहीं होती। हिन्दुत्व में किसी धर्म ग्रंथ या महापुरूश के पीछे चलने की मजबूरी नहीं है। हिन्दुत्व में कोई व्यक्ति स्वतंत्रता पूर्वक भी अपने विचार दे सकता है। इस्लाम में ऐसी स्वतंत्रता नहीं है।
प्रष्न–9 सर्व धर्म समभाव का अर्थ क्या है। क्या उस समय कई प्रकार के धर्म थे जैसे वर्तमान में है।
उत्तर–धर्म व्यक्तिगत होता है और सर्व धर्म समभाव का मतलब है प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता का सम्मान।

प्रष्न–10 क्या इस्लाम व्यक्ति के मौलिक अधिकारों को नहीं मानता है।
उत्तर–इस्लाम और साम्यवाद व्यक्ति को सम्पत्ति मानते है जबकि ईसाईयत और हिन्दुत्व व्यक्ति के मौलिक अधिकारों को स्वीकार करते है। हिन्दुत्व में व्यक्ति संसाधन नहीं होता। बल्कि एक स्वतंत्र व्यक्ति होता है।
प्रश्न–11 क्या हिन्दुओं में सामाजिक हिंसा को धार्मिक स्वीकृति नहीं है।
उत्तर–हिन्दुओं में समाज को दण्ड देने का कोई अधिकार नहीं है। समाज बहिश्कृत कर सकता है किन्तु दण्ड समाज द्वारा बनाई गई राजनैतिक व्यवस्था देती है। कोई भी व्यक्ति किसी भी व्यक्ति को किसी भी रूप में दण्डित नहीं कर सकता। दण्ड हमेषा संवैधानिक व्यवस्था होती है।
प्रष्न–12 संविधान निर्माताओं में कौन लोग ऐसे थे जिनका अधिक प्रभाव पडा।

उत्तर–संविधान निर्माताओं में पंडित नेहरू, सरदार पटेल और भीमराव अम्बेडकर अधिक प्रभावषाली थे। इनमें भी सरदार पटेल कमजोर पड़े। नेहरू और अम्बेडकर इस्लाम से अधिक प्रभावित थे।

प्रष्न–13 क्या गुण प्रधान धर्म के लक्षण दिख रहे है।

उत्तर–धीरे धीरे उस दिषा में बढने के प्रयत्न हो रहे है। साम्प्रदायिकता घट रही है। हर क्षेत्र में निजीकरण बढने से भ्रश्टाचार भी घट रहा है। जातिवाद पर भी धीरे धीरे अंकुष लग रहा है। 70 वर्श की बीमारी दूर करना आसान काम नहीं है।

प्रष्न–14 क्या वर्तमान टकराव को आप उचित मानते है।

उत्तर–मेरे विचार से तो मोदी के पूर्व कोई टकराव नहीं था क्योंकि अल्पसंख्यकों को सरकारी संरक्षण प्राप्त था। वे लगातार अपना विस्तार कर रहे थे। हिन्दू दूसरे दर्जे का नागरिक मान लिया गया था। अब मोदी के बाद धीरे धीरे हिन्दुओं में कुछ कुछ जान दिखने लगी है। स्वाभाविक है कि अल्पसंख्यक अभी अपनी श्रेश्ठता में बदलाव के लिये तैयार नहीं है। इसलिये टकराव स्वाभाविक है। मुझे लगता है कि अल्पसंख्यक सच्चाई को समझेगे और अपने विषेशाधिकार छोडकर समान नागरिक संहिता के लिये तैयार हो जायेगे। अब तक अल्पसंख्यक सच्चाई को समझ भी लेते किन्तु विपक्षी दल उन्हें समझने नहीं दे रहे क्योंकि यदि अल्पसंख्यक भी बिछड़ गये तो विपक्षी दल अस्तित्वहीन हो जायेगे। इसलिये यह अंतिम प्रयास दिख रहा है।

प्रष्न–15 क्या संघ के लोग भी नासमझ होते है।

उत्तर–कोई भी व्यक्ति न पूरी तरह नासमझ होता है न ही पूरी तरह समझदार। लेकिन यदि कोई व्यक्ति किसी संगठन से जुड जाता है तब उसकी समझदारी कम होने लगती है। संघ के लोग को वैसे भी तर्क से दूरी बनाकर रखते है। संघ के लोग अधिक भावना प्रधान होते है इसलिये उन्हें नासमझ कहा जा सकता है।

प्रष्न–16 आप यह प्रष्न विष्व हिन्दू परिशद से क्यों नहीं कर रहे है।

उत्तर–विष्व हिन्दू परिशद वाले ही तो दोनो विपरीत बाते करते है। उनसे प्रष्न करने में खतरे भी बहुत है क्योंकि प्रष्न करते ही वे लोग नाराज भी हो जाते है। उत्तर तो उनके पास होता ही नहीं।

प्रष्न–17 यदि हिन्दू षब्द रखे तो क्या आपत्ति है।

उत्तर–हिन्दू षब्द से हिन्दुत्व का बोध नहीं होता इसलिये हमें हिन्दू राश्ट्र षब्द नही अपनाना चाहिये। हिन्दू राश्ट्र तो इस्लाम की नकल मात्र है हिन्दुत्व का बोध नहीं कराता।

प्रष्न–18 समान नागरिक संहिता से गुणात्मक धर्म कैसे बढेगा।

उत्तर–समान नागरिक संहिता से साम्प्रदायिक टकराव समाप्त हो जायेगा। अल्पसंख्यक विषेशाधिकार भी खत्म हो जायेगे और हिन्दू कोड बिल भी समाप्त हो जायेगा। व्यक्ति एक इकाई होगा। धर्म, जाति, लिंग, उम्र भेद नहीं होगा। गरीब अमीर के लिये अलग कानून नहीं होगा। आपसी टकराव खत्म होने से गुणात्मक बदलाव आयेगा।

मंथन क्रमांक 154 आर्थिक समस्याओं का आर्थिक समाधान

समस्याएं कई प्रकार की होती है। उनमें भी तीन प्रकार प्रमुख माने जाते हैः– 1. सामाजिक 2. आपराधिक 3. आर्थिक। इन तीनों समस्याओं का स्वरूप भी भिन्न भिन्न होता है, परिणाम भी भिन्न होता है और समाधान भी। सामाजिक समस्याओं का सामाजिक समाधान होता है तो आर्थिक समस्याओं का आर्थिक और आपराधिक समस्याओं का प्रषासनिक। सारी दुनियां में राजनीति ने पूरी समाज व्यवस्था को लगभग गुलाम बना लिया है इसलिये भी समस्याओं के समाधान में प्रषासनिक हस्तक्षेप बढ़ता जा रहा है। भारत में तो यह स्थिति बहुत ज्यादा जटिल हो गई है। भारत में सामाजिक समस्याओं का आर्थिक और प्रषासनिक समाधान खोजा जाता है तो आपराधिक समस्याओं का आर्थिक और सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं का सामाजिक और प्रषासनिक। यह स्थिति पूरी तरह अव्यवस्था बढाने वाली है किन्तु भारत लगातार इस दिषा में बढ़ता जा रहा है।

यदि हम अलग अलग वर्गीकरण करे तो आर्थिक समस्याओं में महंगाई, बेरोजगारी, गरीबी, आर्थिक असमानता ग्रामीण उद्योगों में गिरावट, बेरोजगारी, भ्रश्टाचार, विदेषी कर्ज जैसी कुछ समस्याएं सम्मिलित है। ये समस्याएं पूरी तरह आर्थिक मानी जाती है। इनका समाधान भी आर्थिक ही होना चाहिये किन्तु हमारे देष की प्रषासनिक व्यवस्था इन समस्याओं का सामाजिक प्रषासनिक समाधान खोजने का प्रयास करती है। आर्थिक असमानता पूरी तरह आर्थिक समस्या है, लेकिन अनेक नासमझ नेता आर्थिक असमानता के समाधान के लिये अमीरी रेखा तक का सुझाव देते है। हर साम्यवादी तो इस दिषा में पूरी तरह सक्रिय रहता ही है।

भारत में वर्तमान समय में 99 प्रतिषत तक भ्रश्टाचार है। ये भ्रश्टाचार भी लगभग पूरी तरह आर्थिक समस्या है। भ्रश्टाचार कम करने में एक–दो प्रतिषत ही प्रषासनिक हस्तक्षेप सहायक हो सकता है अन्यथा प्रषासनिक तरीके से भ्रश्टाचार समाप्त नही हो सकता। जब भ्रश्टाचार लगातार तेजी से बढ़ रहा है और प्रषासनिक व्यवस्था की क्षमता 2 प्रतिषत से अधिक होती ही नही है तो भ्रश्टाचार रूकेगा कैसे, जब तक उसकी वृद्धि दर नहीं रूकेगी। कुछ नासमझ तो सामाजिक समस्या बताकर यहां तक प्रवचन देते है कि हमें घूस ना देनी चाहिये ना लेनी चाहिये अब ऐसे नासमझों की क्या चर्चा की जाये। कालाधन भी उसी तरह आर्थिक समस्या है। बेरोजगारी जिस तरह दिख रही है वह हमारी गलत परिभाशा का परिणाम है। हमने बेरोजगारी की परिभाशा विदेषों से नकल की और इसी आधार पर हम बेरोजगारी की गणना करने लगे। महंगाई भारत में लगातार घट रही है फिर भी महंगाई बढ़ने का असत्य प्रचार लगातार किया जा रहा है। विदेषी कर्ज भी बढ़ने का कारण आर्थिक अव्यवस्था ही है। कुछ नासमझ स्वेदषी के नाम पर लोगों को समझाते है कि हमें विदेषी वस्तु का उपयोग नहीं करना चाहिये। इन नासमझों से कोई यह नहीं पूछता कि विदेषी कपड़ा या विदेषी पेन का उपयोग अनुचित है तो विदेषी महिला या पुरूश से विवाह कितना उचित है। समाज में स्वदेषी व विदेषी के नाम पर अनावष्यक भ्रम फैलाया जाता है। गरीबी और अमीरी षब्द का भी लगातार दुरूपयोग होता है। सच्चाई यह है कि गरीबी और अमीरी पूरी तरह आर्थिक मामला है, सामाजिक और प्रषासनिक नहीं। अन्य आर्थिक मामलों को भी सामाजिक या आपराधिक समस्या बताकर प्रषासनिक और नैतिकता के समाधान सुझाये जाते है। षराब, वैष्यावृत्ति अथवा गांजा पूरी तरह सामाजिक समस्या है। मैं लगातार देख रहा हूँ कि ऐसी सामाजिक समस्याओं को भी प्रषासनिक समस्या बताकर उनका प्रषासनिक समाधान खोजा जाता है। जेलों में बंद अपराधियों के हृदय परिवर्तन के प्रयास किये जाते है। यहां तक नाटक होता है कि जेलों में धर्मगुरूओं के प्रवचन भी कराये जाते है। स्पश्ट है कि यही धर्मगुरू षराब और गांजा के नियंत्रण के लिये तो कानून की मांग करते है दूसरी ओर यही असफल धर्मगुरू अपराधियों का हृदय परिवर्तन करने के लिये जेलों में प्रवचन देते है। वर्तमान भारत में लगातार बढती जा रही समस्याओं का मुख्य कारण विपरीत तरीके से समाधान है। स्पश्ट है कि भारत में जो आर्थिक समस्याएं लगातार बढ़ रही है उसका भी प्रमुख कारण आर्थिक समाधान की तुलना में सामाजिक प्रषासनिक समाधान खोजने का प्रयास है। इस तरह के विपरीत प्रयास कुछ भूल वष भी हो रहे है तो कुछ जानबूझकर भी हो रहे है। हम आंख बंद करके हर क्षेत्र में नकल कर रहे है। यदि दुनियां ने बंदूक पिस्तौल को छोटा और गांजा, अफीम को बड़ा अपराध घोशित कर दिया तो भारत भी अपने कानूनों में आंख बंद करके इनकी नकल करता है। आर्थिक समस्याओं के मामले में भी यही बात है कि हम भारत के लोग बेरोजगारी की अपनी परिभाशा बनाने का प्रयत्न भी नही कर रहे बल्कि आंख बंद करके नकल कर रहे है।

भारत की वर्तमान समय में सबसे बड़ी समस्या श्रम षोशण है। श्रम षोशण के लिये स्वतंत्रता के पूर्व बुद्धिजीवियों ने धर्मग्रन्थों को आधार बनाकर सामाजिक नियम कानून बदले थे। स्वतंत्रता के बाद हमारे राजनेताओं ने श्रम षोशण के पूंजीवादी तरीके खोज लिये। इन्होंने सामाजिक और धार्मिक तरीकों को पूरी तरह बदल दिया। आज भी श्रम षोशण का पूंजीवादी तरीका सर्व सम्मति से भारत में आगे बढाया जा रहा है। यहां तक कि सर्व सम्मति से श्रम षोशण के उक्त पूंजीवादी तरीकों को ही श्रम षोशण का समाधान सिद्ध किया जा रहा है। मैं पूरी तरह स्पश्ट हूँ कि आर्थिक समस्याओं को बढाने में हमारे देष के राजनेताओं ने जानबूझकर भी सक्रियता दिखाई है क्योंकि उनका उद्देष्य येन केन प्रकारेण समाज को गुलाम बनाना है। उनका मानना है कि यदि आर्थिक समस्याएं आर्थिक तरीके से हल हो जायेगी तो समाज हमारी आवष्यकता को ही नकार देगा। यही कारण है कि हर राजनेता किसी भी आर्थिक समस्या का इस प्रकार सामाजिक प्रषासनिक समाधान खोजता है कि बिल्ली के बीच बंदर के समान उसकी भूमिका निरन्तर बनी रहे। अर्थात समस्याएं कभी कम न हो, बंदर समस्याओं को कम करने में निरन्तर सक्रिय दिखे और समाज में असमान लोगों के बीच लगातार असंतोश की ज्वाला जलती रहे। यही कारण है कि प्रारम्भ में तो सिर्फ साम्यवादी ही आर्थिक आधार पर वर्ग विद्वेश, वर्ग संघर्श बढ़ाकर उसका लाभ उठाना चाहते थे लेकिन अब तो सड़े गले नेता भी गरीब अमीर के नाम पर, महंगाई और बेरोजगारी के नाम पर, स्वेदषी और विदेषी के नाम पर समाज में निरन्तर वर्ग संघर्श बढ़ाते रहते है क्योंकि उनका मानना है कि यदि आर्थिक समस्याएं घट गई तो बंदर भूखा मर जायेगा।

अभी आर्थिक समस्याएं बिल्कुल विकराल दिखती है, असंभव दिखती है और आज लोगों को कोई मार्ग नहीं दिखता क्योंकि हम आर्थिक समस्याओं का समाधान या तो साम्यवाद में देखते है या पूंजीवाद में जबकि दोनो ही असफल है। साम्यवाद आर्थिक असमानता से राजनैतिक लाभ उठाने का प्रयास करता है तो पूंजीवाद भी इसका अप्रत्यक्ष आर्थिक लाभ उठाना चाहता है। दोनों ही प्रयत्न श्रम षोशण के इर्द गिर्द घूमते है। दोनों ही प्रयत्न चाहते है कि मानवीय उर्जा अर्थात मनुश्य और पषु का जीवन स्तर इतना उॅचा न हो जाये कि उसे अपना उत्पादन विदेषों में निर्यात करने में कठिनाई हो। अपनी राश्ट्रीय आर्थिक स्थिति मजबूत करने के उद्देष्य से श्रम षोशण का मार्ग अपनाया जाता है। राश्ट्रीयता को मानवता से भी उपर मान लिया गया है। यह बात पूरी तरह स्पश्ट है कि सभी आर्थिक समस्याओं का एक साधारण सा समाधान है कृत्रिम उर्जा मूल्य वृद्धि। मैंने जितनी आर्थिक समस्याएं उपर लिखी है सभी समस्याओं का पूरा समाधान कृत्रिम उर्जा मूल्य वृद्धि से सम्भव है। श्रम की मांग बढ़ जायेगी, सब प्रकार के टैक्स हटा देने से कालाधन खत्म हो जायेगा, सम्पूर्ण निजीकरण कर देने से भ्रश्टाचार नगण्य हो जायेगा, विदेषी कर्ज घट जायेगा क्योंकि डीजल प्रेट्रोल की जगह बिजली और सौर उर्जा का उपयोग बढ़ जायेगा, बेरोजगारी की परिभाशा बदल जायेगी, ग्रामीण उद्योग अपने आप पनप जायेंगे क्योंकि आवागमन महंगा हो जायेगा, षहरी आबादी गांव की ओर चली जायेगी, आर्थिक असमानता घट जायेगी। सभी आर्थिक समस्याओं का एक सीधा और सरल समाधान होने के बाद भी हमारे नीति निर्माता इसके ठीक विपरीत आचारण करते है क्योंकि श्रम षोशण नीति निर्माताओं के संस्कार में षामिल हो गया है। वे किसी समस्या का समाधान होते हुये नहीं देखना चाहते बल्कि इस तरह का समाधान करना चाहते हैं जिससे नई समस्या पैदा होती रहे। यदि कृत्रिम उर्जा की भारी मूल्य वृद्धि हो जाये तो भारत तकनीक के मामले में भी बहुत आगे बढ़ सकता है। आज तकनीक के मामले में भारत चीन से बहुत पीछे है। यदि कृत्रिम उर्जा महंगी हो जायेगी तो इससे प्राप्त धन भी तकनीक विस्तार में खर्च किया जा सकता है और आमतौर पर महंगी कृत्रिम उर्जा तकनीक विस्तार के लिये हमें मजबूर भी कर देगी। मेरा यह मत है कि हमें राजनैतिक और राश्ट्रीय मामलों के साथ साथ मानवीय आधार को भी जोडकरर सभी आर्थिक समस्याओं का एक मात्र समाधान

कृत्रिम उर्जा मूल्य वृद्धि की दिषा में बढना चाहिये। मानवीय आधार पर भी समाधान अलग अलग है। कमजोरो की मदद करना मानवीय आधार पर सामाजिक समाधान है तो प्रत्येक व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकारों की सुरक्षा की गारंटी देना उसका प्रषासनिक समाधान है। श्रम षोशण से मुक्ति मानवता का आर्थिक समाधान है। तीनों प्रकार के समाधानों को एक साथ जोड़कर नहीं देखा जा सकता। यद्यपि तीनों का उददेष्य एक है। इसलिये मेरा मत है कि आर्थिक रूप से मानवता की सहायता करने के लिये हमें श्रम षोशण मुक्ति को सर्वोच्च प्राथमिकता बनाना चाहिये और इसके लिये कृत्रिम उर्जा मूल्य वृद्धि सबसे अच्छा समाधान है।

मंथन क्रमांक 154 आर्थिक समस्याओं का आर्थिक समाधान

प्रष्नोत्तर

प्रष्न–1 क्या आर्थिक समस्याओं का प्रषासनिक समाधान नहीं होता।
उत्तर–प्रषासनिक समाधान सिर्फ दो प्रतिषत ही सफल हो पाता है। आर्थिक समस्या बहुत व्यापक है इसलिये प्रषासनिक समाधान संभव नहीं।

प्रष्न–2 आप कैसे कह सकते है कि राजनीति ने समाज व्यवस्था को गुलाम बना दिया है।
उत्तर–जब परिवार के पारिवारिक और व्यक्ति के व्यक्तिगत स्वतत्रंता में भी राजनीति पूरा हस्तक्षेप करने लगे तो उसे गुलामी ही मानना चाहिये। हमारे विवाह अथवा भोजन तक में सरकार को कानून बनाने का अधिकार प्राप्त है।
प्रष्न–3 आप इस विशय को थोडा ओर स्पश्ट करे।
उत्तर–अपराधियों के हृदय परिवर्तन का प्रयास होता है तो उनकी आर्थिक स्थिति भी सुधारने की कोषिष होती है। दूसरी ओर जुआ, षराब जैसी सामाजिक बुराईयों को दूर करने के लिये दंड देने का प्रावधान बनााया गया है। कालाधन पूरी तरह आर्थिक समस्या है, ब्लैक और तस्करी भी आर्थिक समस्या है, किन्तु इन्हें सामाजिक, प्रषासनिक मान लिया जाता है।
प्रष्न–4 क्या गरीबी या अमीरी रेखा का सुझाव गलत है।
उत्तर–मेरे विचार से तो पूरी तरह गलत है कोई व्यक्ति न अमीर होता है न गरीब क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के उपर अधिक बडा अमीर होता है और प्रत्येक व्यक्ति के नीचे अधिक बडा गरीब। अमीरी या गरीबी सापेक्ष षब्द है। यह अवष्य है कि कोई स्थापित व्यवस्था कोई एक मध्यरेखा बनाकर नीचे वालो की मदद कर सकती है।
प्रष्न–5 आप भ्रश्टाचार समाप्त करने का क्या समाधान मानते है।
उत्तर–यदि अधिकतम निजीकरण हो जाये और सरकारी हस्तक्षेप बहुत कम हो जाये तो भ्रश्टाचार 99 प्रतिषत से घटकर दो प्रतिषत आ सकता है। इतना भ्रश्टाचार प्रषासनिक तरीके से रोका जा सकता है।
प्रष्न–6 क्या आप षराब बंदी के पक्ष में नहीं है।
उत्तर–मैं पूरी तरह षराब बंदी के पक्ष में हूँ किन्तु मैं कानून से षराब बंदी नहीं चाहता। कानून को सुरक्षा और न्याय तक सीमित रहना चाहिये। षराब बंदी का काम हम समाज के लोग करते रहेंगे।
प्रष्न–7 भारत ऐसी नकल क्यों करता है।
उत्तर–भारत में विचारको का अभाव हो गया है। हमने अपना संविधान भी पूरी तरह नकल करके बनाया है। अन्य सब मामलों में भी भारत सिर्फ नकल कर रहा है।
प्रष्न–8 स्वतंत्रता के पूर्व श्रम षोशण का क्या आधार था और बाद में क्या बना।
उत्तर–स्वतंत्रता के पूर्व जन्म अनुसार वर्ण व्यवस्था श्रम षोशण का आधार थी। स्वतंत्रता के बाद श्रम षोशण के चार आधार बने 1. कृत्रिम उर्जा मूल्य नियंत्रण 2. जाति आरक्षण 3. षिक्षित बेरोजगारी दूर करने का प्रयास 4. श्रम मूल्य वृद्धि की सरकारी घोशणा।
प्रष्न–9 हमारे नेताओं ने यह सक्रियता कहा से सीखी है।
उत्तर–हमारी भारतीय राजनीति पर साम्यवाद का बहुत प्रभाव रहा है। साम्यवाद से ही यह सब बाते सीखी गयी है।
प्रष्न–10 क्या हर राजनेता बिल्लियों के बीच बंदर की भूमिका में होता है।
उत्तर–मैं तो ऐसा ही मानता हूँ।
प्रष्न–11 क्या आप स्वदेषी के पक्ष में नहीं है।
उत्तर–स्वदेषी का प्रचार भी एक ढोंग है। कपडा स्वदेषी, कलम स्वदेषी और विवाह करना हो तो विदेषी यह हमारा ढोंग है।
प्रष्न–12 आप साम्यवाद को अधिक गलत मानते है अथवा पूंजीवाद को।
उत्तर– श्रम षोशण में साम्यवाद अप्रत्यक्ष भूमिका निभाता है तो पूंजीवाद प्रत्यक्ष। भूमिका दोनो की समान होती है।
प्रष्न–13 कृत्रिम उर्जा मूल्य वृद्धि से आवागमन महंगा हो जायेगा। क्या यह उचित है।
उत्तर–ग्रामीण उद्योगों को फिर से जीवित करने के लिये आवागमन को महंगा होना चाहिये। आवागमन हमारी मूल आवष्यकता नहीं है बल्कि सुविधा माना जाता है। पिछले सत्तर वर्शो में आबादी चार गुना बढी है तो आवागमन सत्तर गुना बढ गया और ग्रामीण उद्योग सत्तर गुना समाप्त कर दिये गये। षहरों की आबादी बढ रही है। यह सब आवागमन बहुत सस्ता होने के कारण हुआ है।
प्रष्न–14 कृत्रिम उर्जा मूल्य वृद्धि से तकनीक पर क्या असर पडेगा।
उत्तर–इसके कारण डीजल पेटोल का आयात बहुत कम हो जायेगा हम सौर उर्जा अथवा जटरोपा आदि की ओर बढेगे। ऐसी तकनीक भी खोजी जायेगी जिसमें कृत्रिम उर्जा का उपयोग कम से कम हो।
प्रष्न–15 प्राकृतिक अधिकार किसे माना जाता है। क्या कमजोरो की मदद करना मजबूतो का दायित्व नहीं है।

उत्तर–प्राकृतिक अधिकार मौलिक अधिकार को माना जाता है और मौलिक अधिकार होता है व्यक्ति की असीम और समान स्वतंत्रता। इस स्वतंत्रता की सुरक्षा की गारंटी संविधान देता है। कमजोरो की मदद करना मजबूतों का स्वैच्छिक कर्तव्य है दायित्व नहीं। क्योंकि यह कमजोरो का अधिकार नहीं होता।

मंथन क्रमांक–155 ''भारत में संसदीय लोकतंत्र है या लोकतांत्रिक संसद''

दुनियां में अनेक व्यवस्थाएं प्रचलित हैं। भारत में समाज सर्वोच्च की व्यवस्था है तो पष्चिम में लोकतंत्र और पूंजीवाद, साम्यवाद में राश्ट्रवाद और सत्ता सर्वोच्च की व्यवस्था प्रचालित है तो इस्लाम में संगठनवाद और धर्म की। भारत की समाज सर्वोच्च की अवधारणा विकृत हुई और भारत लोकतंत्र तथा पूंजीवाद की दिषा में तेज गति से दौड़ने लगा। भारत वैचारिक धरातल पर कमजोर होकर हर दिषा में विदेषों की नकल करने लगा। भारत में वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्था विदेषों की नकल है। भारत में कभी लोकतंत्र नहीं रहा बल्कि समाज व्यवस्था ही रही है जो वर्तमान में लोकतंत्र के समक्ष लगभग समाप्त हो रही है।

लोकतंत्र की पष्चिमी जगत की परिभाशा है कि वह लोक द्वारा लोक के लिये लोक के बीच से ही स्थापित हो। लोकतंत्र के लिये न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका के बीच चेक और बैलेंस सिस्टम अनिवार्य माना गया है। इसका मतलब होता है कि लोकतंत्र के तीनों अंग एक दूसरे पर अंकुष भी रखे और उनकी सहायता भी करे। पष्चिम जगत से भारत ने लोकतंत्र उधार लिया है। पष्चिम में जीवन पद्धति से लोकतंत्र षासन पद्धति तक गया जबकि भारत में सीधा षासन पद्धति में लोकतंत्र आया। जीवन पद्धति में हमारी पुरानी व्यवस्था बनी रही। भारत में परिवार व्यवस्था में अभी तक लोकतंत्र नहीं आ सका और न आने की कोई संभावना दिखती है परिणामस्वरूप भारत की संवैधानिक व्यवस्था में भी एक विकृत लोकतंत्र आया। न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका आपस में लोकतांत्रिक तरीके के विपरीत जाकर अपनी अपनी श्रेश्ठता स्थापित करने लगे। इसमें भी विधायिका के प्रमुख पंडित नेहरू और भीमराव अम्बेडकर ने संसदीय लोकतंत्र को विकृत करने की पूरी कोषिष की। सबसे पहले इन दोनों ने मिलकर छलपूर्वक संविधान संषोधन के अंतिम अधिकार संसद के पास सुरक्षित कर दिये और धीरे धीरे न्यायपालिका तथा कार्यपालिका के अधिकार भी कम करते चले गये। इसके कारण संसदीय लोकतंत्र का संतुलन बहुत बिगड़ा। 1973 में केषवानन्द भारती प्रकरण के बाद न्यायपालिका ने संसद को कमजोर करना षुरू कर दिया और धीरे धीरे न्यायिक सक्रियता को इतना बढ़ा लिया कि न्यायपालिका सर्वोच्च मानी जाने लगी। वर्तमान में न्यायपालिका और विधायिका के बीच सर्वोच्चता का टकराव चरम पर है, और भारत का संसदीय लोकतंत्र इन दोनों के टकराव से घायल हो रहा है।

यह स्पश्ट है कि भारत का लोकतंत्र विकृत हो गया है क्योंकि हमारी संसद लोकतांत्रिक तरीके से काम नहीं कर रही है। जब संसद की कार्यप्रणाली में ही लोकतंत्र नहीं होगा तो संसदीय लोकतंत्र विकृत होगा ही। लोकतांत्रिक संसद की यह परिभाशा होती है कि वहां सत्ता पक्ष और विपक्ष के बीच प्रतिस्पर्धा हो विरोध नहीं। यदि संसद में प्रतिपक्ष कमजोर होता है तब संविधान में मनमाने संषोधन हो जाते है और संसदीय लोकतंत्र विकृत हो जाता है। दूसरी ओर यदि विपक्ष प्रतिस्पर्धा छोड़कर सत्ता पक्ष के विरूद्ध सत्ता की लड़ाई लड़ना षुरू कर दे तब भी लोकतंत्र को नुकसान होता है क्योंकि उस स्थिति में सत्ता पक्ष लोकहित के काम छोड़कर लोकप्रिय कार्य षुरू कर देता है। वर्तमान भारत में यही हो रहा है। संसद लोकतांत्रिक तरीके से काम नहीं कर पा रही है। विपक्ष इस सीमा तक विरोध कर रहा है कि वह कष्मीर में धारा 370 हटाने जैसे उचित कदम के विरूद्ध भी मैदान में तालठोक कर खडा है। प्रतिपक्ष नागरिकता कानून जैसे अच्छे कानून का भी विरोध कर रहा है परिणामस्वरूप सत्ता पक्ष सभी जनहित के कार्यों से दूरी बनाकर हिन्दू मुस्लिम ध्रुवीकरण के एकमात्र लोकप्रिय मार्ग पर चल पड़ा है। लोकतांत्रिक संसद का कोई स्वरूप भारत में दिख नहीं रहा है।

संसद लोकतांत्रिक दिषा में बढ़ भी नहीं सकेगी क्योंकि भारत ने पष्चिम के लोकतंत्र के स्थान पर और भी अधिक गंदगी पैदा कर दी है। अब राजनैतिक दलों में भी लोकतंत्र पूरी तरह समाप्त हो गया है। दस वर्श पहले तक भारतीय जनता

पार्टी, जेडीयू और साम्यवादी दलों में आंषिक लोकतंत्र था वह भी अब धीरे धीरे कमजोर हो रहा है। कांग्रेस, आरजेडी, ममता बनर्जी, मायावती, षिवसेना, आम आदमी पार्टी आदि दलों में तो लोकतंत्र कभी था ही नहीं। राजीव गांधी ने दल बदल कानून बनाकर राजनैतिक दलों के साथ साथ संसद के भी लोकतांत्रिक स्वरूप की सदा सदा के लिये हत्या कर दी। अब जनप्रतिनिधि चुने जाने के बाद संसद में भी स्वतंत्रतापूर्वक अपनी बात नहीं रख सकता। अब तो भारत की सारी राजनैतिक व्यवस्था कुछ दल प्रमुखों की तानाषाही तक आकर सिमट गई है। हमारे चुने हुये सांसद गुलामों के समान उस तरह नेताओं के पीछे पीछे आंख बंद कर हाथ उठाते दिखते हैं जैसे वे सिर्फ भेड़ बकरी मात्र हों। आवष्यकता पड़ने पर इन निर्वाचित जनप्रतिनिधियों को होटलों में कैद कर दिया जाता है। यदि इसी को लोकतांत्रिक संसद कहा जाये तो हमें लोकतांत्रिक होने पर भी षर्म महसूस होती है।

70 वर्शो में भारत के लोकतंत्र में किस सीमा तक गिरावट आयी है कि भारत में भावनात्मक मुद्दों को उछालकर वैचारिक मुद्दे नेपथ्य में कर दिये जाते हैं। प्याज और टमाटर की महंगाई पर सरकार बदल दी जाती है तो कभी अनावष्यक युद्ध का हौवा खड़ा करके भी राजनैतिक सत्ता प्राप्त करने का प्रयास होता है। यदि किसी सत्ताधारी की हत्या हो जाये तो उसी के नाम पर दषकों तक वोटों की दुकानदारी चलती रहती है। इंदिरा जी की हत्या होते ही उस हत्या को सुअवसर में बदलने का प्रयास हुआ। लालू प्रसाद ने अपने जेल जाते समय रावडी देवी को मुख्यमंत्री बना दिया। उत्तर प्रदेष में मुलायम सिंह परिवार के लगभग तीस से ज्यादा सदस्य किसी न किसी राजनैतिक पद पर स्थापित हैं। यदि किसी निर्वाचित जनप्रतिनिधि की मौत हो जाती है तो उसकी पत्नी या पुत्र को ही उस स्थान को भरने के लिये सबसे अधिक योग्य मान लिया जाता है। समझ में नही आता कि भारत में यह कैसा लोकतंत्र है? न तो भारत में संसदीय लोकतंत्र दिख रहा है न ही लोकतांत्रिक तरीके से संसद चल रही है। संसद में विचार विमर्ष को छोड़कर बाकी सारे अंलोकतांत्रिक हथकंडे अपनाये जाते हैं। इस अलोकतांत्रिक संसदीय व्यवस्था से लाभ प्राप्त मीडिया तथा कुछ अन्य बुद्धिजीवी भारत में लोकतंत्र के मजबूत होने की दुहाई देते हैं जबकि भारत में न संसदीय लोकतंत्र है न लोकतांत्रिक संसद है और न राजनैतिक दलों में कोई लोकतांत्रिक व्यवस्था है। एक प्रकार से लोकतंत्र की मरणासन्न लाष को ही हम मजबूत लोकतंत्र की बात कहकर अपनी पीठ थपथपा रहे हैं।

लोकतंत्र का अर्थ होता है लोक नियंत्रित तंत्र। यह परिभाशा हमने कभी स्वीकार नहीं की। लोकतंत्र परिवार से षुरू होना चाहिये तभी सत्ता तक जाकर उसके अच्छे परिणाम निकल सकते हैं। लोकतंत्र में निर्वाचित जनप्रतिनिधि को अपनी बात रखने की पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिये। राजनैतिक दल संसद के अंदर उसे अपनी सोच के विपरीत बोलने या मत देने से नहीं रोक सकते। राजनैतिक दलों के अंदर भी लोकतांत्रिक व्यवस्था होनी चाहिये और इस लोकतांत्रिक व्यवस्था की षुरूवात परिवार से होनी चाहिये क्योंकि परिवार में लोकतंत्र आयेगा तभी उपर जाकर लोकतंत्र मजबूत हो सकेगा। सबसे अच्छी व्यवस्था तो हमारी भारत की रही है जिसमें समाज सर्वोच्च माना जाता है किन्तु अभी हम इतना बदलाव की स्थिति में नहीं हैं तो हम प्रारम्भिक तौर पर दल बदल कानून को समाप्त कराने से ही अपनी षुरूवात करें। यदि दल बदल कानून समाप्त हो जायेगा तो हमारा जनप्रतिनिधि भेड बकरी के स्थान पर जीवित मनुश्य के समान अपनी बात रख सकेगा। पारिवारिक राजनीति पर अंकुष लगेगा। धीरे धीरे लोकतंत्र का स्वरूप भी बदल सकता है। दल–बदल कानून समाप्त होने के बाद 'राइट टू रिकॉल' की मुहिम चला सकते हैं। हम संविधान संषोधन के लिये तंत्र से हटकर कोई अलग व्यवस्था भी खड़ी कर सकते हैं और यदि हम एक बार राजनेताओं की उंगली पकड़ने में कामयाब हो जाये तो हम दुनियां को समाज सर्वोच्च का संदेष भी दे सकते हैं। आवष्यक है कि हम समाज के लोग भारतीय लोकतंत्र के इस बदबूदार नाली से बाहर निकलने का प्रयास करें और नई लोकतांत्रिक संवैधानिक या सामाजिक व्यवस्था पर सोचने के लिये सक्रिय हों।

मंथन क्रमांक–155 ''भारत में संसदीय लोकतंत्र है या लोकतांत्रिक संसद''

प्रष्नोत्तर

प्रष्न–1 क्या आप लोकतंत्र के पक्ष में नहीं है।
उत्तर–अन्य सभी व्यवस्थाओं की तुलना में लोकतंत्र अधिक अच्छा है किन्तु समाज व्यवस्था की तुलना में लोकतंत्र अच्छी व्यवस्था नहीं है। लोकतंत्र को हम मजबूरी मान सकते है, किन्तु आदर्ष नहीं। लोकतंत्र भारतीय व्यवस्था नहीं है। भारत की आदर्ष व्यवस्था वर्ण व्यवस्था मानी जाती है जो बाद में विकृत हो गई और परिणामस्वरूप लोकतंत्र आ गया।

प्रष्न–2 यदि लोकतंत्र के तीनों अंगो में टकराव हो तो अंतिम निर्णय किसका होगा।
उत्तर–लोकतंत्र के तीनों अंग बराबर है यदि टकराव होगा तो दो अंग मिलकर तीसरे पर अंकुष लगाते है।
प्रष्न–3 संविधान संषोधन के अंतिम अधिकार किसके पास होने चाहिये।
उत्तर–संविधान संषोधन के लिये लोक द्वारा एक अलग व्यवस्था बनानी चाहिये जो तंत्र के हस्तक्षेप से पूरी तरह मुक्त हो।

प्रष्न–4 विधायिका ने न्यायपालिका के अधिकार कब कम किये और उसमें नेहरू जी की क्या भूमिका थी।
उत्तर–नेहरू जी पटेल या अम्बेडकर की तुलना में अधिक लोकतांत्रिक थे किन्तु लोहिया, जयप्रकाष, गांधी, राजेन्द्र प्रसाद आदि की तुलना में अधिक तानाषाह थे। सन 51 में नेहरू जी के नेतृत्व में न्यायपालिका के अधिकार कम करके उसे पंगु कर दिया गया।
प्रष्न–5 वर्तमान में न्यायपालिका अधिक गलत है अथवा विधायिका।
उत्तर–वर्तमान समय में न्यायपालिका अधिक गलत है क्योंकि विधायिका के पास दो तिहाई बहुमत नहीं है। न्यायिक सक्रियता अधिक बडी समस्या है। धीरे धीरे अब ये दूरी घट रही है।
प्रष्न–6 वर्तमान समय मे विपक्ष कमजोर है या मजबूत।
उत्तर–विपक्ष को तभी कमजोर माना जाता है जब संसद में उसका महत्व एक तिहाई से कम हो। वर्तमान समय में राज्य सभा में तो वह बहुमत में है। लोकसभा में भी उसकी संख्या एक तिहाई से अधिक है। इसलिये विपक्ष मजबूत है।
प्रष्न–7 राजनीति तो सत्ता संघर्ष ही होती है फिर विपक्ष सत्ता संघर्ष क्यों न करे।
उत्तर–राजनीति संसद के बाहर होनी चाहिये संसद में नहीं। संसद व्यवस्था का एक अंग है इसलिये उसे विरोध की एक सीमा बनानी चाहिये। यदि विपक्ष विरोध करता रह जायेगा तो लोकतंत्र को नुकसान होता है। भारत में यही हो रहा है।
प्रष्न–8 हिन्दू मुस्लिम ध्रुवीकरण में सत्ता पक्ष अधिक दोशी है या विपक्ष।
उत्तर–विपक्ष सरकार को सही काम नहीं करने दे रहा। सरकार यह समझ रही है कि हिन्दू मुस्लिम ध्रुवीकरण ही उसके लिये एक मात्र राजनैतिक मार्ग है इसलिये सत्ता पक्ष इस मार्ग पर तेजी से बढ रहा है और विपक्ष भी उसी दिषा में चलने के लिये मजबूर है। मैं तो इसके लिये विपक्ष को अधिक दोशी मानता हूँ। विपक्ष को कष्मीर के मामले में सरकार की सहायता करनी चाहिये थी।
प्रष्न–9 हमारे जनप्रतिनिधि भ्रश्टाचार करने लगे थे इसलिये दलबदल कानून लाया गया।
उत्तर–हमारे जनप्रतिनिधियों का भ्रश्टाचार रूक गया और दल प्रमुखो का भ्रश्टाचार बढ गया। व्यवस्था में किसी प्रकार का केन्द्रीयकरण घातक होता है। भ्रश्टाचार का भी केन्द्रीयकरण हुआ और इस केन्द्रीयकरण का मुख्य आधार राजीव गांधी द्वारा लाया गया दलबदल कानून है। केन्द्रित भ्रश्टाचार की तुलना में विकेन्द्रित भ्रश्टाचार कम बुरा होता है। दुर्भाग्य से विकेन्द्रित भ्रश्टाचार को समाप्त करने के लिये केन्द्रित भ्रश्टाचार का सहारा लिया गया।
प्रष्न–10 आपने जो लिखा है वह सही है किन्तु इसका समाधान क्या है?
उत्तर–दलबदल कानून को पूरी तरह समाप्त कर देना चाहिये। इसके बदले में परिवार और गांव को अधिक अधिकार दे दिये जाये तो उपर का भ्रश्टाचार अपने आप खत्म हो जायेगा।
प्रष्न–11 भारत की संसद में जो तमाषा होता है वह लोकतंत्र की बुराई है या भारतीय संसद की।

उत्तर–मेरे विचार से यह संसदीय लोकतंत्र की बुराई है किन्तु भारत में यह ज्यादा व्यापक हो गई है क्योंकि भारतीय लोकतंत्र में न आदर्ष संसदीय लोकतंत्र है न आदर्ष लोकतांत्रिक व्यवस्था है और न ही दलों की आंतरिक व्यवस्था में कहीं लोकतंत्र दिखता है।

प्रष्न–12 क्या भारत में लोकतंत्र नहीं है?

उत्तर–जब भारत का संविधान ही तंत्र का गुलाम है तब हम भारत में लोकतंत्र कैसे कह सकते है क्योंकि लोकतंत्र में संविधान के अनुसार तंत्र कार्य करता है तो तानाषाही में तंत्र के अनुसार संविधान चलता है।

प्रष्न–13 यदि परिवार व्यवस्था में भी लोकतंत्र आयेगा तो लोकतंत्र की बुराईयां परिवार व्यवस्था को भी प्रभावित करेगी। अभी परम्परागत परिवार व्यवस्था में ये बुराईयां नहीं घुस सकी है।

उत्तर–तानाषाही की अपेक्षा लोकतंत्र कम बुरी व्यवस्था है और लोकतंत्र की अपेक्षा लोकस्वराज्य आदर्ष व्यवस्था है। तानाषाही में अव्यवस्था नहीं होती। इसका यह अर्थ नहीं है कि हम अव्यवस्था के डर से तानाषाही को पसंद करने लग जाये। उचित तो यह होगा कि हम लोकतंत्र को लोकस्वराज्य की दिषा देने का प्रयास करे। परिवार व्यवस्था में परम्परागत रूप से जो तानाषाही है उसे लोकतंत्र या लोकस्वराज्य की दिषा में ले जाना चाहिये।

प्रष्न–14 दल बदल कानून समाप्त करने के लिये हम क्या कर सकते है।

उत्तर–हम अधिक कुछ करने की स्थिति में नही है किन्तु हम दल बदल कानून के विरूद्ध जनजागरण कर सकते है।

समायिकी

दिल्ली प्रदेष के चुनाव सम्पन्न हो चुके है। मतगणना भी दो–तीन दिनों में हो जायेगी। स्पश्ट दिखता है कि अरविन्द केजरीवाल तीन–चौथाई बहुमत से चुनाव जीत सकते है।

मेरा अरविन्द केजरीवाल से निकट का सम्पर्क रहा है और मैं मानता रहा हूॅ कि प्रधानमंत्री बनने की योग्यता में अरविन्द केजरीवाल और नितिष कुमार ही नरेन्द्र मोदी को टक्कर दे सकते है। लोकसभा चुनाव के पूर्व तक अरविन्द केजरीवाल को कुछ भ्रम हो गया था। उनकी दिषा गलत थी जो उन्होंने छः महीनों में सुधार ली। अन्यथा परिणाम बहुत विपरीत भी हो सकते थे। संभव है कि भविश्य में वे सुधरी हुई लाइन पर चले। मैंने ठीक पांच वर्श पूर्व एक व्यक्तिगत पत्र लिखकर अरविन्द केजरीवाल को महत्वपूर्ण सलाह दी थी और वह पत्र 16 अप्रैल 2015 के ज्ञान तत्व क्रमांक 311 में प्रकाषित भी किया था। मैं समझता हूॅ कि वह पत्र आज भी उतना ही प्रासंगिक है। उस पत्र के माध्यम से मैंने उन्हें जो सलाह दी थी। लगभग वह मार्ग आज उनके लिये उपयोगी हो रहा है। ज्ञान तत्व में प्रकाषित पत्र इस प्रकार हैः–

9/10/311क लेख आम आदमी पार्टी का इतिहास और वर्तमान

अरविन्द केजरीवाल ही आम आदमी पार्टी के संस्थापक रहे हैं। मेरा प्रारंभ से ही उनके प्रति झुकाव रहा है। मैं जब दिल्ली में रहता था तब अरविन्द जी का झुकाव राजनैतिक था और मेरा सामाजिक। किन्तु स्वषासन और स्वराज्य की प्राथमिकता पर दोनों एकजुट रहे और मिल कर काम करते रहे। मैं वानप्रस्थ लेकर दिल्ली से रामानुजगंज लौट गया और वे वहीं काम करते रहे। कुछ माह बीतने के बाद ही वे अपने सहयोगी टीम के साथ रामानुजगंज आये और वहीं बैठकर दो तीन दिन तक स्वराज्य विषय पर विस्तृत चर्चा हुई। मैंने वानप्रस्थ के बाद किसी संगठन में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष भूमिका से इन्कार कर दिया और उन्हें सलाह दी कि वे किसी स्थापित गॉधीवादी के मार्ग दर्षन में स्वराज के लिये आन्दोलन करें तो अधिक अच्छा होगा। स्पष्ट है कि उन्होने अन्ना हजारे जी को खोजा और बाद का घटना क्रम आप सब जानते हैं। आन्दोलन की आवष्यकता के रुप में उन्होने स्वराज्य नामक पुस्तक लिखी जो सभी दृष्टि से एक अच्छी पुस्तक है।

वे समय–समय पर मुझसे सलाह भी लेते रहे। मनीष सिसोदिया तथा गोपाल राय मेरे निकट के परिचित रहे हैं। प्रषान्त भूषण से मेरा कोई परिचय नहीं था किन्तु पालमपुर के पास उनके गॉव में जो तीन दिनों की चिन्तन बैठक हुई थी उसमें मैं रहा और वहीं मेरा उनसे प्रत्यक्ष परिचय हुआ। मैने महसूस किया कि प्रषान्त भूषण एक सुलझे हुए व्यक्ति हैं। उस

बैठक में ही एक लम्बी चर्चा हुई कि संविधान संषोधन के संसद के असीम अधिकारों का विकल्प खोजा जाय। प्रषान्त भूषण इसके लिये हर बार प्रत्यक्ष जनमत संग्रह पर जोर देते रहे और अरविन्द जी इसके लिये ग्राम सभाओं को षामिल करना चाहते थे। मैं आम चुनाव के समय ही एक पृथक संविधान संषोधन सभा पर जोर देता रहा। कोई निष्कर्ष नहीं निकला।

अब वर्तमान की चर्चा करें। यह विवाद किसी भी रुप में व्यक्तित्वों का टकराव नहीं है बल्कि पूरी तरह सैद्धांतिक है। जो लोग इस विवाद को व्यक्तियों के टकराव के रुप में देख रहे हैं, वे गलत हैं। प्रषान्त भूषण,मयंक,गॉधी,योगेन्द्र यादव की एक स्थापित विचारक के रुप में पहचान रही है। वे जहॉ भी रहे हैं वहॉ विचारों को प्राथमिकता के आधार पर महत्व देते रहे।उन्होने व्यावहारिक राजनीति से कभी समझौता नहीं किया भले ही अकेले ही क्यों न रहना पड़े। अरविन्द केजरीवाल व्यावहारिक राजनीति के पक्षधर रहे हैं। स्पष्ट है कि व्यावहारिक राजनीति के प्रति भीड़ का अधिक समर्थन मिलता है जबकि सैद्धांतिक राजनीति करने वालों को प्रषंसा तो बहुत मिलती है किन्तु सहयोगी या सहभागी नहीं मिलते। सैद्धांतिक राजनीति में अनुपम त्याग छिपा रहता है। उसमें कष्ट में भी सुख मिलता है जबकि व्यावहारिक राजनीति में लाभ की संभावना जुड़ी रहती है। स्पष्ट है कि त्याग और लाभ के बीच तुलना करें तो भीड़ लाभ की दिषा में ही झुकी दिखती है।

मैंने अरविन्द जी को सुझाव दिया था कि अन्ना जी से अलग होने के बाद आप चरित्र प्रधान राजनीति करने की चर्चा बन्द करिये। राजनीति सन्तों की धारा के अनुकरण से हमेषा असफल होती है। यही कारण है कि प्राचीन समय में भी ब्राम्हण प्रवृत्ति वालों को प्रत्यक्ष राजनीति से दूर रहकर सिर्फ नीति निर्धारण में ही मार्ग दर्षन देने तक सीमित रहने की सीमा बनाई गई थी। आज भी जो गेरुआ वस्त्र पहनकर राजनीति कर रहें हैं वे अपने वस्त्रों के रंग से समाज को धोखा देने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। राजनीति में रहकर व्यक्तिगत चरित्र ठीक रखना एक अलग विषय है। ऐसे चरित्र का बहुत प्रभाव पड़ता है किन्तु चरित्र की राजनीति की घोषणा करना अपने उपर संकटों का पहाड़ आमंत्रित करने जैसा है। गॉधी ने, जयप्रकाष ने, सन्त विनोबा ने या अन्ना हजारे ने भी चरित्र का महत्व सामने रखा किन्तु उन सबका लक्ष्य व्यवस्था परिवर्तन था, सत्ता परिवर्तन नहीं। मैंने अपने पूरे जीवन काल में कभी राजनीति और चरित्र को एकसाथ नहीं जोड़ा। राहुल गॉधी भी राजनीति और चरित्र को जोड़कर देखने का प्रयास कर रहे हैं। परिणाम सबके सामने हैं। कई बार समझाने के बाद भी अरविन्द सहमत नहीं हुए। लगातार नैतिकता और चरित्र का षंखनाद करते रहे। परिणाम स्वरुप उनके साथ चरित्र की भीड़ इकट्ठी होती गई और अरविन्द जी के राजनीतिक दिषा की ओर झुकते ही पार्टी के बिखराव का स्वरुप उत्पन्न हो गया।

यदि आपको सत्ता संघर्ष में कूदना है तो आपके साथ जुड़ने वाला आपके सत्ता में आते ही अपनी सहायता की कीमत वसूलना चाहेगा। जनता और कार्यकर्ता के बीच तालमेल बनाना और उसके लिये लीक से कुछ हटना राजनैतिक मजबूरी है। अरविन्द इस लीक से हटने की आवष्यकता समझते हैं और इसी लीक से हटने को योगेन्द्र प्रषान्त भी टीम विचलन मानती है क्योंकि ढोल पीट–पीट कर आपने राजनीति और चरित्र को एक साथ जोड़ने की बात की थी। यदि दो करोड़ रुपये की बात प्रषान्त जी आदि ने किसी को बताई भी हो तो इसमें गलत क्या है। क्या सत्ता के लिये प्रषान्त भूषण योगेन्द्र यादव अपनी जीवन भर की स्थापित पहचान खो दें। ऐसा न तो संभव है न उचित। लेकिन दो विपरीत आचरणों को साथ जोड़कर चलाने का प्रयत्न गलत है। ऐसे गलत प्रयत्न गलत परिणाम देंगे ही।

अरविंद केजरीवाल एक अति परिश्रमी, सिर्फ काम की बात करने वाला, परिस्थिति अनुसार नीतियों से सामंजस्य बिठाने वाले व्यक्तित्व का नाम है। अरविंद समय का अधिकतम सदुपयोग करने वाले व्यक्ति का नाम है। अरविंद ने अन्ना से अलग होने के बाद जिस स्वच्छ राजनीति की घोषणा की थी वह घोषणा करना उनकी एक भूल थी। उन्होने अपनी भूल सुधार ली।उनमें एक प्रधानमंत्री बनने की सभी योग्यताऍ मॉजूद है।राजनीति में जिस सीढी से चढ़कर उपर पहुॅचा जाता है उस सीढ़ी को तोड़ देना एक राजनैतिक कौषल है। पता नहीं अब तक योगेन्द्र यादव,प्रषान्तभूषण,मयंक,गॉधी,इस बात को क्यों नहीं समझ सके। अरविन्द जी पूरी तरह सुषासन की दिषा में बढ़ रहें हैं और स्वषासन की लीक छूटती जा रही है। दोनों गुटों का यह भ्रम जितनी जल्दी दूर हो उतना ही अच्छा है। तेल और पानी एक साथ मिलकर लम्बे समय तक नहीं चल सकते। यदि आग पर भी चढ़ेगे तो अलग आवाज बन्द नहीं होगी।

मैं स्पष्ट समझता हूँ कि अरविन्द पूरी तरह सत्ता संघर्ष में कूद चुके हैं। सत्ता संघर्ष का मतलब है चुनाव जीतने लायक उम्मीदवार को सर्वोच्च प्राथमिकता। उसकी अत्यंत घातक बदनाम छवि न हो तो सामान्यतः चरित्र के साथ समझौते करने पड़ते हैं। दिल्ली के चुनावों में इतनी बड़ी सफलता किसी कौषल को प्रमाणित करती है। स्पष्ट है कि अन्दर खाने अन्य दलों की तरह ही चरित्र से समझौते हुए। टीम प्रषान्त भूषण के लिये यह सब पूरी तरह घातक था क्योंकि सम्पूर्ण भारत ने आम आदमी पार्टी को अन्य राजनैतिक दलों से अलग माना है। टीम अरविंद का मानना है कि राजनीति का संघर्ष राजनैतिक षस्त्रों से ही लड़ना होगा। हम बिना किसी राजनैतिक षस्त्र के सौ साल भी नहीं जीत सकते। स्पष्ट है कि टीम अरविंद तथा प्रषान्त की प्राथमिकताएँ बिल्कुल बदली हुई हैं। प्रषान्त भूषण ने आप पार्टी को व्यवस्था परिवर्तन का आधार मानकर इतनी मेहनत की है जबकि अरविंद केजरीवाल की प्राथमिकता सत्ता संघर्ष में विजय प्राप्त करना है और यदि सत्ता मिल जायगी तब अपनी जंग लग रही स्वराज पुस्तक को निकालकर देखेंगे कि अब इस संबंध में क्या करना है? अरविंद की दिषा एकदम साफ है किन्तु यदि इतनी साफ बात भी प्रषांतभूषण,योगेन्द्र यादव,मयंक गॉधी अब तक नहीं समझ सके तो बताइये कि मैं किसे गलत कहूँ। दोनों जब तक एक हैं तब तक समाज में एक गलत संदेष जा रहा है। टीम अरविन्द ने तो अपनी प्राथमिकताएँ स्पष्ट कर दी हैं। टीम प्रषान्त को अब स्पष्ट करना है कि अब भी क्या उनका मोह नहीं छूटा है। मान लीजिये कि दो तीन वर्ष बेकार गये। या तो विष्वास करिये कि येन केन प्रकारेण सत्ता में आकर उसके बाद परिवर्तन की बात करेंगे अथवा अलग होकर व्यवस्था परिवर्तन का कठिन मार्ग चुनिये जो हम जैसे लोगों ने चुन रखा है। स्पष्ट दिषा न लेकर गलती आप लोग कर रहे हैं, अरविंद नहीं क्योंकि उनकी लाइन स्पष्ट है।

मेरा व्यक्तिगत मत है कि अन्ना हजारे को अकेला छोड़कर अलग होना ही स्पष्ट सबूत था कि पार्टी सत्ता संघर्ष की लाइन में जा रही है। यह मार्ग स्पष्ट था। मुझे मालूम है कि चुनाव लड़ने की जल्दबाजी करने वालों में प्रषान्त भूषण योगेन्द्र यादव सबसे आगे थे। यहॉ तक कि ये लोग तो दिल्ली विधानसभा से भी पहले हिमांचल विधानसभा लड़ने तक का उतावला पन दिखा रहें थे किन्तु सब अन्ना लहर को अपनी लहर समझकर हवा में उड़ रहें थे किन्तु थोड़े ही दिनों में जब मोदी लहर से टक्कर हुई तो यथार्थ का पता चला। दिल्ली के चुनाव में एक पक्षीय सफलता का श्रेय अरविंद की बदली हुई रणनीति को ही है और वर्तमान विवाद के बढ़ने का कारण भी उनको बदली हुई रणनीति को ही है।

मैं बहुत पहले से मानता रहा हूँ और अब भी मानता हूँ कि लोकतंत्र कभी दीर्घकालिक मार्ग नहीं है। गॉधी कभी ऐसे लोकतंत्र के पक्ष में नहीं थे। सफलता के लिये या तो तानाषाही उचित मार्ग हैं अथवा लोकस्वराज्य। यह भी स्पष्ट है कि भारत सरीखा लोकतंत्र यदि लम्बे समय तक चला तो अव्यवस्था निष्चित है जिसका अन्तिम परिणाम है तानाषाही। भारत के किसी भी दल में आन्तरिक लोकतंत्र नहीं है। आंषिक रुप से जदयू में है जिसका स्वाभाविक परिणाम है अव्यवस्था । भारतीय जनता पार्टी ने भी षुरुवात तो मोदी की तानाषाही से ही की थी किन्तु संघ स्वयं एक तानाषाह व्यवस्था रही है। कोई तानाषाह किसी अन्य के स्वतंत्र अस्तित्व से परेषान होता है। परिणाम स्पष्ट है कि संघ लगातार मोदी को परेषान कर रहा है। अरविंद केजरीवाल को भी तीन में से एक चुनना था (1)लोक स्वराज्य अर्थात पार्टी से लेकर सरकार तक सहभागी लोकतंत्र(2)अव्यवस्था(3)तानाषही। अरविंद ने पहले मार्ग पर चलने की घोषणा की थी जो एक आदर्ष किन्तु कठिन मार्ग है। उन्होंने जल्दी ही बीच का मार्ग पकड़ा जिसमें अव्यवस्था होनी स्वभाविक थी। उन्होनें बिना समय बिताये तीसरा मार्ग पकड़ लिया जिसने उन्हें सफलता दिलाई किन्तु सफलता पूर्वक तानाषाही का आना इतना आसान भी नहीं है। इसमें अपने सबसे निकट व्यक्ति को या तो संतुष्ट करना पड़ता है या धोखा देना पडता है। अरविंद अपने इसी टकराव से दो चार हो रहे हैं। यदि वे टकराव को भी पार करके एक तानाषाह के रुप में स्थापित होने में सफल रहे तो निष्चित है कि वे प्रधानमंत्री मोदी को राष्ट्रीय स्तर पर कड़ी टक्कर दे सकेंगे।

अब तक के पूरे लेख से आप मेरे कथन का निष्कर्ष नहीं समझ सके होंगे। मेरा निष्कर्ष यह है कि भारत में लोकतंत्र एक असफल सिद्धांत है। या तो तानाषाही सफल है या सहभागी लोकतंत्र अर्थात लोक स्वराज्य। जो लोग लोकतंत्र की बात कर रहे हैं वे या तो धोखा दे रहें हैं या खा रहें हैं। न भारत में कोई परिवार लोकतंत्र को अपना रहा है न कोई राजनैतिक दल। यदि तानाषाही की ही दिषा में जाना है तो मोदी क्या बुरे है और अरविंद क्यों बुरें होंगे? यदि सहभागी लोकतंत्र की दिषा में जाना है तो ऐसी कोई मन्षा न अरविंद की दिख रही है न प्रषान्त ग्रुप की। परिवार गॉव जिले को संवैधानिक अधिकार देने तथा संसद के संविधान संषोधन के असीम अधिकारों में कटौती के लिये तेरह जून 2014 से 22 जून तक का दस दिनों का वैचारिक सम्मेलन दिल्ली में हुआ तब अरविंद ग्रुप तथा प्रषान्त ग्रुप ने इस सम्मेलन में विचार

रखने तक से इन्कार कर दिया।इसलिये मैं खुद नहीं समझ पाया कि इन दोनों समूहों में से कौन धोखा दे रहा है कौन खा रहा है। मैं तो इसी निष्कर्ष तक पहुँचा हूँ। आप अपने विचार देंगे तब और चर्चा होगी।

मनुष्य के मूल(प्राकृतिक)अधिकार का परिप्रेक्ष्य और मनुष्य कृत व्यवस्थाएं–

प्रकृति के प्रांगण में जीवन की उत्पत्ति और एवं इसमें विस्तार पायी हुई मानव सभ्यता के अस्तित्व पर जब भी मेरी नजर पड़ती है तो मन में बरबस ही यह विचार उत्पन्न होता है कि मनुष्य ही प्रकृति का नायक है,किन्तु अनेक मनुष्यकृत व्यवस्थाओं के कार्यान्वयन स्वरूप आने वाले परिणाम मुझे ऐसा निश्चय करने से रोक देते हैं। मैं मनुष्य जाति से इतर अन्य जीव–जगत को प्रकृति के सान्निध्य में जीवन निर्वाह करते हुए देखता हूँ तो यह सिद्ध पाता हूँ कि प्रकृति से समन्वय का आधार ही इनकी जीवन शैली है। मनुष्य जाति से अन्य,जीवन चक्र यह सिद्ध करते हैं कि वे संग्रह विहीन हैं और प्रकृति के विस्तार को बिना नुकसान पहुँचाए अपने अस्तित्व को जीते चले जा रहे हैं।लेकिन प्रकृति ने मनुष्य की उत्पत्ति करने में अपने सर्वश्रेष्ठ कौशल का प्रयोग किया है। क्योंकि इसने मनुष्य के अस्तित्व को शविवेक एवं संग्रहश जैसे अतुलनीय गुणों से सुसज्जित किया है। मनुष्य को अपने अनुदान परोसने से प्रकृति यहीं तक नहीं रुकी बल्कि इसने मनुष्य को इन गुणों के परस्पर समन्वय के लिए बुद्धि के रूप में और भी अनमोल उपहार दिया है। लेकिन मनुष्य जाति ने सदैव से ही अधिकांश अवसरों पर बुद्धि के द्वारा विवेक और संग्रह जैसे गुणों का व्यावहारिक समन्वय करने से परहेज किया है और यदि कोई गांधी जैसा पुरुष ऐसा करने का प्रयास करता भी है तो उसे भीड़ द्वारा नकारने की हर सम्भव कोशिश की जाती है। मनुष्य जाति की इस क्रिया का परिणाम यह है कि एक मनुष्य, दूसरे मनुष्य से अपनी सुरक्षा के लिए प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास करने में लगा रहता है और हमारा यही प्रयास हमारी व्यवस्थाओं को न्यायकारी नहीं बनने देता है।

मनुष्य जाति की यह सर्वविदित घोषणा कि मनुष्य बौद्धिक प्राणी है, मुझे मनुष्यकृत सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं आर्थिक व्यवस्थाओं की स्थापना के कारण एवं इनके प्रचलित प्रकार की समीक्षा करने के लिए बार–बार उद्वेलित करती है। यद्यपि मनुष्य जाति ने अपनी सभी व्यवस्थाएं मानवता के सार्वभौम विकास एवं नेतृत्व के लिए निर्मित की हैं, लेकिन काल के आधुनिकतम क्षण तक भी ये व्यवस्थाएं अपने सार्वभौम उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कोई प्रयास नहीं कर पायी हैं । इसका कारण मनुष्य अपनी बौद्धिक क्षमताओं का प्रयोग अपने भौतिक विकास में अधिक तथा प्रकृति से समन्वय करने में बहुत कम करता है। यद्यपि मनुष्य का भौतिक विकास कोई अनुपयोगी क्रिया नहीं है किन्तु हमारे भौतिक विकास का लक्ष्य क्या है?क्या प्रकृति पर नियन्त्रण करना?अपने प्रकृति प्रदत जीवन में मनुष्य ने अपनी इन व्यवस्थाओं के निर्माण का आधार तो जीवन के लिए न्याय व सुरक्षा के उद्देश्य की पूर्ति करना ही बनाया है किन्तु मनुष्य के अधिकांश क्रियाकलाप अपनी व्यवस्थाओं के मौलिक सिद्धान्तों से विमुख ही रहे हैं। भौतिक संसार में मनुष्यकृत व्यवस्थाओं का प्रत्येक प्रपंच प्रकृति पर नियन्त्रण करने का उद्देश्य सिद्ध करता रहा है। दुनिया के सभी देशों के बीच आर्थिक प्रतिस्पर्धा और इनकी सामरिक शक्ति का विकास मेरे इस तथ्य को सिद्ध करता है। मनुष्य के ऐसे सभी प्रयासों के कारण सभ्यता का विकास तो कहीं ठिठक कर रुक गया है और इसके विकास के नाम पर जो भी क्रियाकलाप हो रहे हैं वे प्रकृति पर नियन्त्रण और इसके भक्षण से ज्यादा कुछ नहीं है। मैं पुनः कह रहा हूँ कि यदि ऐसा न होता तो व्यक्ति सृष्टि संहारक हथियारों का सर्जन न करता,अर्थ के संग्रह को विकास का मानक ने कहता, मानवता का विकास और स्वतंत्रता, उदण्ड राज्यों की सीमाओं में न बंधती और न मनुष्य स्वयं को समाज के परिप्रेक्ष्य के विरुद्ध रहने वाले वर्ग संघर्ष के सिद्धान्तों के प्रति उत्तरदायी सिद्ध करता। वस्तुतः जीवन प्रकृति की देन है और इसका संरक्षण समाज की कृपा। यह दृष्टिकोण तब सिद्ध हो सकता है जब व्यक्ति स्वयं को समाज के प्रति उत्तरदायी सिद्ध करे और समाज स्वयं को प्रकृति के प्रति। मैं जब भी इस विषय का निरीक्षण करता हूँ तो मैं मनुष्य–मात्र को इस नीति के विरुद्ध ही पाता हूँ। इस दशा में भी मनुष्यकृत व्यवस्थाओं का ढांचा ऐसा नहीं बनाया जाता है जो मनुष्य को इस क्रम के प्रति प्रतिबद्ध रहने के लिए बाध्य करे। हाँ मनुष्य सदैव से ही प्रकृति से समन्वय के नाम पर ईश्वरवाद के प्रति श्रद्धानत रहा है,लेकिन इसके इस प्रयास के द्वारा पैदा हुआ उपासना भेद और मनुष्य की साम्प्रदायिक पहचान के विषय समाज में जिस वर्ग संघर्ष को बढ़ावा देते आ रहे हैं क्या वे मनुष्य को कभी प्रकृति से समन्वय करने देंगे?मेरे विचार से तो

भौतिक संसार में मनुष्य का प्रकृति से व्यावहारिक समन्वय बनाने का प्रयास प्राकृतिक शक्ति (ईश्वर)की उपासना का सर्वोच्च प्रकार सिद्ध होगा, यह निश्चित है।
मनुष्यकृत व्यवस्थाओं में असन्तुलन के प्रभाव को समझने के लिए इस व्यावहारिक दृष्टिकोण की समीक्षा भी आवश्यक है कि सहज आनन्द प्राप्ति की तरफ झुकना मनुष्य का प्राकृतिक स्वभाव होता है और देखा जाए तो अनेक बार आनन्द की प्राप्ति के लिए मनुष्य अपनी जीवनचर्या से विकास के प्राकृतिक सिद्धान्त को नकारता है। समाज ने धर्म की व्यवस्था विकास के प्राकृतिक सिद्धान्त का अनुपालन करने के उद्देश्य से की है और श्राज्य तथा अर्थश नाम की व्यवस्था मनुष्य के भौतिक विकास और इसकी उच्चाकांक्षाओं को सन्तुलित रखने के लिए।व्यवस्था के निर्माण के लिए न्याय के दर्शन का भी यही अभिप्राय हो सकता है। लेकिन आश्चर्य है कि वर्ग संघर्ष की मनोदशा से ग्रस्त व्यक्ति समय–समय पर निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए इन व्यवस्थाओं के नए सिद्धान्त गढता है और उनके जरिए समाज को नियन्त्रित करता है। वस्तुतः व्यक्ति,जीवन को व्यवस्था के जिन प्रावधानों के अनुसार जीता है इसका व्यावहारिक चरित्र उन्हीं दशाओं के अनुसार विकसित होता है। मेरे विचार से व्यक्ति के लिए इस सिद्धान्त के प्रभाव से स्वतन्त्र रहना असम्भव कार्य है। अर्थात यह भी सच है कि समाज के स्थापित दृश्य के लिए हमारी व्यवस्था का ढाँचा उत्तरदायी होता ही है। मनुष्य को यदि व्यवस्था के असामाजिक संत्रास से मुक्ति पानी है तो इसे व्यवस्था के ऐसे स्वरूप पर विचार करना होगा जो मनुष्य को प्रकृति से समन्वय करने के लिए उत्तरदायी सिद्ध करे। यथास्थिति यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि व्यवस्था का वह कैसा स्वरूप हो सकता है?इस प्रश्न का उत्तर हमें मनुष्य के अस्तित्व की उत्पत्ति के सिद्धान्त का निरीक्षण करने में मिलेगा। मनुष्य समाज की प्राकृतिक इकाई है, इसलिए इससे सम्बन्धित व्यवस्थाओं के स्वरूप का प्रबन्ध भी इसके प्राकृतिक अधिकार को व्यवस्था का आधार मानकर होना चाहिए।

प्रकृति के प्रांगण में मनुष्यकृत व्यवस्थाओं की रचना मनुष्यों की भीड़ तथा अन्य प्रकृति को नियन्त्रित करने के लिए नहीं की जानी चाहिए,बल्कि इनकी रचना जीवन की आवश्यकताओं के ऐसे प्रबन्ध के लिए की जानी चाहिए जिनके तत्वावधान में प्रकृति का दमन न हो और जीवन की मौलिक स्वतन्त्रता समाज की विभिन्न इकाइयों के बीच परस्पर व्यवहार को सन्तुलित रखते हुए अक्षुण्ण रहे। वस्तुतः व्यवस्था की स्थापना का अभिप्राय यह होता है कि यह मनुष्य के जीवन को नियन्त्रित नहीं करती बल्कि इसे परस्पर व्यवहार में किसी भी अन्य की स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप न करने तक उसकी असीम स्वतन्त्रता की सुरक्षा की प्रतिभूति देती है। असीम स्वतन्त्रता ही व्यक्ति का एकमात्र प्राकृतिक अधिकार होता है। व्यवस्था के निर्माण के प्रस्तुत सन्दर्भ को रेखांकित करते हुए यह तथ्य स्पष्ट करना भी उचित रहेगा की असीम स्वतन्त्रता का मूल अधिकार केवल व्यक्ति का ही होता है,यह न तो किसी मानव समुदाय अथवा मनुष्यों के किसी वर्ग का हो सकता है और न अन्य जीव जगत का। यद्यपि मानवता के दृष्टिकोण से यह अधिकार प्रत्येक प्राकृतिक जैविक इकाई का होना चाहिए,लेकिन ऐसा होगा तो मनुष्यकृत व्यवस्थाओं के अनेक विषयों का कोई स्वरूप ही निश्चित नहीं किया जा सकेगा! मनुष्य बौद्धिक प्राणी है। संग्रह एवं विवेक जैसे गुणों की क्रियात्मक स्थिति में केवल यह ही समन्वय कर सकता है। इसलिए अन्य जीव जगत को संरक्षण देने का उत्तरदायित्व भी इसी का है। पर हाँ इस विवेचना में इस कथन को गम्भीरता पूर्वक दौहराना उचित रहेगा कि मनुष्यकृत किसी भी सार्वजनिक व्यवस्था के निर्माण के समय समाज में व्याप्त किसी भी वर्ग अर्थात धर्म,जाति,क्षेत्र, भाषा,उम्र, लिंग, गरीब–अमीर, उत्पादक–उपभोक्ता के आधार पर बने संगठन का कोई मूल अधिकार नहीं होता है। आधुनिक समाज की व्यवस्था में धर्म, जाति, क्षेत्र और भाषा के आधार पर पनपी हुई संस्कृतियों को समाज की व्यवस्था के निर्माण का आधार नहीं बनाया जा सकता है। पूर्व में रहे मनुष्य की सामाजिक व्यवस्था के निर्माण के सिद्धान्तों का महत्व,मानव सभ्यता के वैश्विक विस्तार के परिप्रेक्ष्य को देखते हुए अर्थहीन हो गया है।वस्तुतः मनुष्य की सामाजिक व्यवस्था का स्वरूप देशकाल परिस्थिति के अनुसार ही निर्मित होना चाहिए। यह आशय इस कथन के द्वारा भी स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य ने आधुनिक दुनिया में समाज के प्राकृतिक संगठन के विरुद्ध बने हुए वर्गों को संरक्षण देने वाली व्यवस्थाओं का निर्माण करके देख लिया है कि इसके परिणाम स्वरूप प्रकृति का अस्तित्व ही दाव पर लग गया है ।विचार कीजिए कि धर्म,जाति और क्षेत्र के विषय को व्यवस्था का आधार मानने वाले कोई दो आण्विक शक्ति से सम्पन्न राष्ट्रों के प्रमुख युद्ध का निश्चय कर लें तो प्रकृति के अस्तित्व को कौन बचा सकेगा?आज भारत व पाकिस्तान के बीच बैर का आधार धर्म है। पाकिस्तान व ईरान के बीच इसका कारण क्षेत्रवाद है। रूस और अमेरिका के बीच इसका कारण क्षेत्र तथा जाति का विचार है तो अमेरिका और चीन के बीच राजनीतिक,आर्थिक एवं क्षेत्रवाद के विषय हैं। दुनिया के अनेक देशों के बीच यह परिस्थिति उन मनुष्यकृत व्यवस्थाओं की देन है जो समाज के प्राकृतिक स्वरूप को नष्ट करके समाज में बने हुए विभिन्न वर्गों में व्यवस्थागत शक्ती का केन्द्रीयकरण करती है। वस्तुतः आज तक लोकतन्त्र सहित दुनिया की अन्य कोई भी व्यवस्था प्रणाली ऐसा होने से नहीं

रोक सकी है। ऐसा होने का कारण हमारी व्यवस्था के निर्माण के किसी भी परिप्रेक्ष्य में मनुष्य और प्रकृति के सम्बन्ध तथा मनुष्य के प्राकृतिक अधिकार की विवेचना का न होना है। आज तक प्रत्येक मनुष्यकृत व्यवस्था चाहे वह राज्य के रूप में निर्मित हो या समाज के स्वरूप में, सभी शक्ति के केन्द्रीयकरण के रूप में व्यक्त होती हैं और भीड़ में निर्मित किसी न किसी सामाजिक वर्ग से संरक्षण पाती हैं। जबकि जीवन की उत्पत्ति का प्राकृतिक सिद्धान्त शक्ति के निरन्तर विसर्जन में निहित है। जीवन की प्राकृतिक इकाइयों के रूप में प्रत्यक्ष प्रकृति जब स्वयं में निहित शक्ति का विसर्जन करती है तो नए जीवन का सर्जन होता है। यह प्रकृति का सनातन स्वरूप है। लेकिन तमाम मनुष्यकृत व्यवस्थाएं प्रकृति के इस स्वरूप की अवहेलना करके शक्ति का अनावश्यक सर्जन करती हैं और व्यवस्थाओं के परिप्रेक्ष्य में मनुष्य को समाज की प्राकृतिक इकाइयों के रूप में स्वीकार नहीं करती।आश्चर्य यह है कि इस क्रिया को करने वाला स्वयं मनुष्य ही तो होता है।

खैर प्रस्तुत विषय का यह विश्लेषण इस प्रश्न को जन्म देता है कि व्यवस्था का वह स्वरूप कैसे बने जो समाज के परिवेश को मनुष्य जाति के आन्तरिक वर्ग संघर्ष से मुक्त कर दे तथा सभ्यता का विकास इस प्रकार हो कि वह प्रकृति से समन्वय करते हुए समाज का आधुनिक स्वरूप गढ़े? इस प्रश्न का उत्तर केवल यह है कि समाज के परिवेश में निर्मित होने वाली तमाम व्यवस्थाओं के केन्द्र में मनुष्य का अस्तित्व समाज की प्राकृतिक इकाई के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए न कि किसी वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में। क्योंकि ऐसा नहीं होगा तो दुनिया भर में विभिन्न सरकारें, संगठनवाद को जनप्रतिनिधित्व का आधार बनाकर समाज को वर्ग संघर्ष के दलदल में फंसाए रखेंगी। इस आधुनिक काल में भी भारत सहित दुनिया के तमाम देशों में रह रहे मानव समुदाय के आचरण पर नजर डालते हैं तो व्यक्ति की सामाजिक संरचना का क्रम इस प्रकार दिखाई देता है–व्यक्ति–परिवार– कबीला अथवा कुटुम्ब–जाति –सम्प्रदाय अथवा पन्थ के दुष्चक्र में उलझी हुई अनेक देशों की भीड़। मनुष्य की सामाजिक संरचना का यह प्रकार इसे सामाजिक समन्वय की नीति पर चलने ही नहीं देता है। यदि व्यवस्थाओं की संरचना में व्यक्ति को समाज की प्राकृतिक इकाई के रूप में स्वीकार कर लिया जाए तो समाज का जीवन क्रम इस प्रकार बन जाएगा–व्यक्ति– परिवार– गांव या शहरी वार्ड अथवा व्यक्ति की निकटतम सामाजिक इकाई– जिला या प्रदेश(शासन तथा प्रशासनिक व्यवस्थाओं के दृष्टिकोण से निर्मित इकाइयां)–देश–विश्व अथवा समाज। मूलतः देश भी सामाजिक व्यवस्था की पूरक इकाई नही होना चाहिए बल्कि यह सामाजिक व्यवस्था की क्रमगत इकाई होना चाहिए। व्यवस्था का ऐसा क्रम बनाने से उग्र राष्ट्रवाद एवं सामरिक शक्ति के अनावश्यक अति विकास पर रोक लगेगी। मूलतः लोकतन्त्र भी सामाजिक संरचना के इसी सिद्धान्त का पालन करके अपने उत्कर्ष को प्राप्त कर सकता है। वैसे भी समाज के परिदृश्य में मनुष्यकृत लोकतान्त्रिक व्यवस्थाएं अपने ढांचों के निर्माण की ऐसी उद्घोषणा तो करती हैं लेकिन विभिन्न देशों की लोकतान्त्रिक व्यवस्था के निर्माण की इकाइयां इनका निर्माण करते हुए व्यवस्था निर्माण के इस मूलभूत सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करती कि व्यवस्था सदैव यथार्थ के समाज के प्रति उत्तरदायी होनी चाहिए। लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं में अतीत की सामाजिक परम्पराओं को यथार्थ की व्यवस्था के नियम के रूप में प्रवृत्त करना कभी–भी उपयुक्त नहीं हो सकता है, क्योंकि घटनाएं समाज के स्वरूप को बदलती रहती हैं । परिवर्तन सृष्टि का शाश्वत नियम है। ऐसे कारण हमें व्यवस्थाओं को यथार्थपरक बनाने के लिए सचेत करते हैं। सामाजिक व्यवस्थाओं में अतीत की परम्पराओं को नियम के रूप में स्वीकार करने का परिणाम इस्लामिक एवं ईसाई राज्यों के जैसे घातक एवं असामाजिक व्यवस्थाओं के निर्माण के रूप में दुनिया के सामने आते हैं। ऐसी बेतुकी मांग भारत में कई हिन्दु अतिवादी भी उठाते रहते हैं।यदि व्यक्ति अपनी व्यवस्थाओं को सामाजिक यथार्थ के अनुसार प्रबन्धित नहीं करेगा तो समाज के परिवेश से वर्ग व सभ्यताओं के संघर्ष को कभी समाप्त नहीं कर सकेगा।मनुष्यकृत व्यवस्थाओं के स्वरूप में दोष की उत्पत्ति का कारण व्यवस्था के ढांचे में यथार्थपरकता का अभाव है और इसके उन्मूलन का प्रकार व्यक्ति को समाज की प्राकृतिक इकाई के रूप में स्वीकार करना है। इसका अन्य तो कोई और प्रकार नहीं हो सकता है।

नरेन्द्र सिंह।–9012432074

(लेखक ,बजरंग मुनि सामाजिक शोध संस्थान, से जुड़े हुए हैं।)